: तृतीय अध्याय :

अस्तित्ववाद से प्रभावित आलोच्य हिन्दी उपन्यास : एक मूल्यांकन ।

(1) अजय की डायरी - डॉ.देवराज उपाध्याय -सन - 1960

(2) अपने-अपने अजनबी - अज्ञेय- सन 1961

(3) लाल टीन की छत - निर्मल वर्मा - सन - 1974

: तृतीय अध्याय :

अस्तित्ववाद से प्रभावित आलोच्य हिन्दी उपन्यास : एक मूल्यांकन ।

बीसवीं शती के साहित्य को फ्रायड़ और मार्क्स ने काफी प्रभावित किया । दूसरे महायुद्ध के पश्चात् हिन्दी साहित्य में अस्तित्ववादी तथ्यात्मकता तथा भारतीय यथार्थ के संदर्भों का अंतर्भाव दिखाई देने लगा। अस्तित्ववाद ने मार्क्स की सर्वहारा-वर्ग की एकता को अस्वीकार नहीं किया। इस सर्वहारा-वर्ग की एकता ने सामाजिक स्थापनाओं को औद्योगिक जीवन की जटिलता और वैज्ञानिक युग की यांत्रिकता के बीच बंधे व्यक्ति की नवीन आकुलता प्रस्तुत की है।

"आधुनिक चेतना के निर्माण में अस्तित्ववाद का महत्त्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य में इसकी चर्चा सन 1960 के आसपास आरंभ हुई। मानवीय यथार्थ के मानसगत रूपों और बाहरी परिवेश की यथार्थ की बात की जाती है। यह अस्तित्वावादी स्थापनाओं से भिन्न नहीं है। अस्तित्ववाद जीवन-यथार्थ के अनुसंधान की तात्विक प्रक्रिया है और इन रूपों में संपूर्ण समरोत्तर साहित्य में उपलब्ध है।"[1]

मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यासों ओर व्यक्तिवादी उपन्यासों के रूप में जिन कृतियों की चर्चा की जाती है, उनमें मानवीय अस्तित्व रूपों की टूटन, क्षोभ, आक्रोश, पीड़ा, निरर्थकता, विसंगति, संत्रास को स्पष्ट रूप में देखा जाता है। "मनोविश्लेषणप्रधान प्रणाली का उपयोग करनेवाले उपन्यासकारों में जैनेंद्रकुमार, इलाचंद जोशी, रमेश बक्षी, धर्मवीर भारती के सिवाय विशुद्ध सामाजिक चेतना के वाहक उपन्यासकार यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, रेणु, नागार्जुन, श्रीलाल शुक्ल आदि की गणना की जाती है। इनमें से कुछ उपन्यासकारों में फ्रायडीयन मनोविश्लेषण की रूढ़ियों का यथावत् परिपालन किया गया है। उनका मनोविश्लेषण जीवन के गत्यात्मक आरोह-अवरोह के भीतर से व्यक्त होता है। जीवन की गतिशीलता और प्रवाह की अभिव्यक्ति अपने आप परंपरागत मनोविश्लेषण से अलग आस्तित्विक मनोविश्लेषण का सहारा लेती है।"[2]

अस्तित्ववाद का प्रभाव प्रमुख रूप से पाश्चात्य रचनाकारों पर अधिक रहा है। जर्मन के डॉ.मार्टिन हैडगर नित्शे ये अनीश्वरवादी अस्तित्वावाद के प्रवर्तक माने जाते है। फ्रेंच विचारक ज्यां-पाल. सार्त्र तो अस्तित्ववाद के निर्माता माने जाते हैं। डेन्मार्क के विचारक कीर्केगार्द का इनमें नाम आ जाता है। फ्रेंच विचारक एवं वैज्ञानिक पास्कल भी इस दर्शन के समर्थक माने जाते हैं।

एक ओर हम देखते हैं कि अस्तित्ववाद, विश्वयुद्ध के दौरान बनी परिस्थितियों से जो धोखा आज के समाज को हो सकता है, उसकी पूर्व चेतावनी देने का काम करता है। दूसरी ओर यही अस्तित्ववाद परंपरा से चलती आयी धार्मिक मान्यताएँ, रीति, परंपरा को तोड़ता हुआ व्यक्तिस्वातंत्र्य का समर्थन करता नजर आता है। डॉ.शिवप्रसाद के कथनानुसार, "कीर्केगार्द, नित्शे और दोस्तोव्हस्की ने सत्य को वैयक्तिक अनुभव की वस्तु माना और उन्होंने अस्तित्व के ऊपर आरोपित सभी आवरणों को, चाहे वे धर्म, समाज, राज्य, दर्शन अथवा नैतिकता से ही उत्पन्न क्यों न हो विदीर्ण करने का प्रयत्न किया। व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली, जीवन को एक नयी दृष्टि।"[3]

अस्तित्ववादी दर्शन प्रमुखत: मानव के वैयक्तिक अस्तित्व पर सोचता है। आजकल के भौतिकता से भरे युग में आज का मानव अपने अस्तित्व की पहचान भूलता जा रहा है। उसे पूर्ववत करने की चेष्टा अस्तित्ववाद करता है।

इस दर्शन के बारे में प्रसिद्ध दार्शनिक कीर्केगार्द का मत है कि, "अस्तित्ववादी विचार प्रत्यक्षत: नहीं प्रस्तुत किये जा सकते।"[4] अप्रत्यक्ष रूप से उनका कहना है, इसकी अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास, कहानी, नाटक, वैयक्तिक जीवन के बारे में जो लेख होते हैं, वहीं माध्यम बन सकते हैं। आधुनिक कुछ रचनाकारों का ऐसा प्रयत्न है, जिनमें से अज्ञेय, निर्मल वर्मा, डॉ.देवराज उपाध्याय आदि है। इन्होंने अपने उपन्यासों में अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास, घुटन, अलगाव, मृत्यु की भयंकारिता, ऊब, ईश्वर में अनास्था आदि अस्तित्ववादी बातों पर सोचा है।

1.अजय की डायरी - डॉ.देवराज उपाध्याय -1960

डॉ.देवराज उपाध्याय लिखित उपन्यास 'अजय की डायरी' आधुनिकता को स्पर्श करता हुआ अस्तित्ववादी दर्शन के मोड पर से गुजरता है। डॉ.देवराज स्वयं एक दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक चिन्तक होने के कारण इसमें नायक अजय जैसे संवेदनक्षम मनुष्य की कमजोरियों एवं जरूरतों को उद् घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। आज के भौतिकवादी संसार में मनुष्योंद्वारा जो मूल्यों का विघटन हो रहा है, उसके खिलाफ संघर्ष इस उपन्यास में दिखाया गया है। अजय की डायरी का विषय है, मूल्यों के विघटन विरोधी निश्चयात्मक संघर्ष - मूल्य चेतना का पुनराख्यान करते हुए उसका मंडन। इसी संघर्ष के दौरान इस उपन्यास के पात्रों में कुछ अस्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ उभरती है वे निम्नलिखीत है।

(1) अकेलापन :-

'अकेलापन' का अर्थ है, मनुष्यों का एक-दूसरे से कटा रहना। इस मानसिक अवस्था में मनुष्य परिचित तथा अपरिचित जनों में अपनी स्वयं की चेतना के अनुरूप सोचता है एवं व्यवहार करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में 'अकेलेपन' की भावना स्वयं अजय और उसकी पत्नी में निहित है। दोनों की तात्विक विचारधाराएँ, रूचियाँ, जीवन दृष्टिकोण अलग-अलग है।यही कारण है कि, वे दोनों पति-पत्नी होकर भी एक दूसरे से अकेले है। अजय की यह सोच उसका पत्नी से अकेला होने का प्रमाण देता है। "मैं चाहता था कि, वह बहुत निकट हो, भौतिकरूप में ही नहीं मन और बुद्धि के धरातल पर भी कि, वह मेरे संपूर्ण जीवन की साझीदार हो, मेरे समूचे, अविभाजित अस्तित्व की स्वामिनी, कि मैं जो कुछ भी सोचूँ और महसूस करूँ उसमें वह मेरे साथ रहे। न जाने क्यूँ शुरू से ही मुझे अकेलेपन का एहसास रहा है।"[5]

अजय के इस अकेलेपन का कारण उसकी पत्नी शीला की भौतिकवादी प्रवृत्ति है। वह अपने घर में जो अकेलापन महसूस करता है, वह उसे अपने ऑफिस के अकेलेपन जैसा लगता है। जहाँपर मनुष्य व्यवहार करता है, तो सिर्फ नियमों की अनिवार्यता के कारण। स्वयं और शीला में जो पति-पत्नी का संबंध है, अजय को वह एक सामाजिक नियमों का बोझ लगता है। जिसका परिणाम अकेलापन है, "कुछ विशिष्ट अवसरों पर मुझे भी अपना यह कर्तव्य जान पड़ता है कि, शीला से एक नार्मल पति व प्रेमिक जैसा व्यवहार करूँ - और उसके समर्पण में रस लूँ। यह दूसरी बात है कि, इस प्रकार का व्यवहार मेरे भीतर के एकान्त को भरने या विचलित कराने में एकदम ही असमर्थ ही रहता है। उस एकान्त की दृष्टि से इन्स्टीट्यूट और घर में खास अन्तर नहीं है।"[6]

अजय के अनुसार जीवन का अकेलापन नारी ही दूर कर सकती है, "जीवन का एकान्त दूर करने के लिए नारी-साथी की जरूरत होती ही है।"[7] हो सकता है, अजय का हेम से आकर्षण उसके इसी समझ का कारण हों।

अजय ने अकेलेपन में अपने अस्तित्व को हेम पर इतना निर्भर किया है कि जब वह हेम से दूरी महसूस करता है तो स्वयं को एक असहाय और अकेले यात्री की तरह पाता है, "मेरा अस्तित्व मानों एक नई निर्भरता में बँध गया है। लगता है जैसे अब मेरे अकेले यात्री के लिए कहीं कोई राह और गन्तव्य नहीं मिलेगा।"[8]

अपने अकेलेपन को भुलाने के लिए अजय दिवास्वप्नों में खो जाता है। उसे लगता है कि, उसके अकेले मन को सहारा देने के लिए कोई तो आएगा जिसकी एक संकरे, छोटे रेल के डिब्बे में मैं लेटा पडा हूँ। मैं अकेला, पर मन:स्थिति ऐसी है जैसे किसीकी प्रतीक्षा में होऊँ, जैसे कोई मुझे बिठाकर पुन: वापस आने का आश्वासन देकर चला गया हो।"[9] अजय का यह अकेलापन कुछ मात्रा में उसका सामाजिक वातावरण और कुछ मात्रा में उसका मनोविज्ञान है। अजय चाहता है कि कोई उसे उसकी अनुभूति में झांककर उसकी अवगति को समझे, लेकिन उसके दुर्भाग्य से उसका कोई साथी ऐसा नहीं, जिसके कारण वह और भी अकेला हो गया है और वह अपने अकेलेपनपर मनोवैज्ञानिक ढंग से सोचता है, "मेरा एकान्त-क्या मैं असामाजिक हूँ ? शायद हाँ, शायद नहीं।"[10] अजय अपने अकेलेपन को बाँटने के लिए हेम की तरफ आकृष्ट हो जाता है। उसमें वह अपने मनीषी साथी की तलाश करता है। मनुष्य के इस मनोविज्ञान के लिए शान्तिसुमन का यह कथ्य अजय के लिए सार्थ है कि, "अकेलापन पहाड जैसा जमकर बैठा हुआ, मन को घोंट देनेवाला अकेलापन इस तरह मन को अकेलेपन की घाटियों में लावारिस छोड देने से क्या ?"[11]

डॉ. हेतु भारद्वाज जी इस अकेलेपन एवं मानव का दूसरों एवं अपने आपसे कटे-कटे रहने का कारण बताते हैं कि, "स्वातंत्र्योत्तर काल में महानगरीय जीवन तथा आधुनिक सभ्यता के परिवेश ने मानव के जीवन में अलगाव, अपरिचय, अकेलापन भर दिया है तथा परिवेश के कारण मानव-प्रतिमा समाज से तथा अपने आप से कटी-कटी अनुभव करने लगी है।"[12] यह आधुनिक सभ्यता ही इस उपन्यास के पात्रों के अकेलेपन का कारण है।

(2) अजनबीपन :-

अपने ही परिवेश में चीजों एवं व्यक्तियों से परायेपन का अनुभव होना ही 'अजनबीपन' की निशानी है। मनुष्य का अस्तित्ववादियों की तरह विवशता का अनुभव करना भी उसमें अजनबीपन की भावना भर देता है। जम्मू-कश्मीर की सैर से लौटने के बाद अपने इन्स्टीट्यूट, बी. नगर के वातावरण से अजय कश्मीर के वातावरण की तुलना करने लगता है। दोनों की असीम भिन्नता देखकर उसमें समझौता करना उसके बस की रहती नहीं है। उसकी इस विवशता से वह अपने परिवेश में अजनबीपन महसूस करता है, "अपने कमरे में घुसा, तो लगा जैसे किसी अजनबी जगह में आ पहुँचा हूँ।"[13] मनुष्य की इस विवशता के बारे में, "एक विद्वान सीमन ने

'ऑन द मीनिंग ऑफ एलिएनेशन' नामक अपने एक लेख में लिखा है कि, अजनबीपन के मूल में असमर्थता व विवशता की भावना है, जिससे क्रमश: सामाजिक जीवन की अर्थहीनता व आदर्शहीनता उजागर होती है और मूल्यगत खोखलेपन का अनुभव होता है, जो धीरे-धीरे सामाजिक जीवन की उदासीनता और अलगाव में बदलकर मनुष्य के जीवन को एकाकीपन और अजनबीपन की भावना से भर देता है।"[14]

अजय जब रिसर्च के लिए अमरीका चला जाता है, तब वहाँ की यांत्रिकता एवं भौतिकवादिता से भरे वातावरण में स्वयं को अजनबी पाता है। अमरीका के भौतिकी वातावरण में फँसे आज के मनुष्यजाति की पहचान हमें मि. त्रिपाठी के इस कथन से मिलती है, "इस देश में उद्योगव्यवसाय प्रधान है-व्यक्ति का महत्त्व कम होता जा रहा है, व्यक्ति संगठन में खोता जा रहा है।"[15] अजय का कहना है कि, इन पाश्चात्य देशों नें सिर्फ भौतिक बातों और विज्ञान में प्रगति की है, मनुष्य के सार्थक अस्तित्व की उन्हें कोई परवाह नहीं, जिसमें अजय जैसा सार्थक अस्तित्व की चाह रखनेवाला अपने आपको ॲडजस्ट (ढाल) नहीं कर पाता। निगम को वह लिखता है, "यहाँ के वातावरण में अपने को फिट करना मैं सहज नहीं पा रहा हूँ। प्रश्न भौतिक अनुकूलता का नहीं उस दृष्टि से कोई अड़चन नहीं लगी। समस्या है, मानसिक और आत्मिक समायोजन की।"[16]

अमरीका के उपयोगितावादी से वह वहाँ के वातावरण में स्वयं को बेगाना एवं अजनबी समझने लगता है। "एक ऐसे व्यक्ति को, जिसे उपयोगिता से उलझन होती है, यहाँ का वातावरण कुछ बेगाना लगता है।"[17] अजय की अजनबीपन एवं परायेपन की भावना आज की आधुनिक सभ्यता एवं यांत्रिकता की देन है। अजय की यह अजनबीपन की भावना , "पूँजीवाद के मानव व्यक्तित्व पर पडे जटिल प्रभावों के योग से उत्पन्न एक विशेष प्रकार के अनुभव की दशा से है जिसमें व्यक्ति अपने आपको इस दुनिया में और अपने जीवन में एक अजनबी अनुभव करता है।"[18]

अजनबीपन, अकेलेपन की भावना प्राय: संवेदनशील व्यक्तियों में पायी जाती है। अजय भी एक संवेदनशील व्यक्ति है। वह एक बुद्धीजीवी भी है, जिसके कारण उसका संवेदनक्षम मन जल्दी ही अजनबीपन जैसी भावना का शिकार हो जाता है। अजनबी व्यक्ति ज्यादा संवेदनशील प्रकृतिवाले और प्रतिभाशाली होते है।

(3) अलगाव :-

अलगाव के बारे में डॉ. अन्सर्ट फिशर लिखते है, "The Contradiction between the findings of modern Science and the backwardness of Socieal understnding also encourges a sence of alienation"[19] (एक ओर आधुनिक विज्ञान की विकसित यांत्रिकता और दूसरी ओर सामाजिक पिछडापन। यह विरोधाभास यहाँ के व्यक्तियों की मानसिकता में विशेष 'अलगाव' की भावना भर देता है।) अजय और शीला के दांपत्यजीवन का 'अलगाव' इसी बात की देन है। शीला भौतिक सुखों को जीवन में महत्त्व देनेवाली नारी है। इसके विपरीत अजय को आत्मिक सुखों की जरूरत है। दोनों में 'आधुनिकता'के संदर्भ में वैचारिक भिन्नता है।

शीला अजय से प्यार सिर्फ उपयोगिता की दृष्टि से करती थी। अजय चाहता था कि, शीला उसकी अनुभूति में झाँककर उसकी आगे बढ़ने की प्रवृत्ति को प्रेरणा दे, लेकिन यह कभी हो नहीं पाता था। दोनों के बीच तनाव बढ़ता ही गया। "धीरे-धीरे मेरे और शीला के बीच तनाव आने लगा , एक प्रकार का अलगाव जो दोनों ही ओर खीझ एवं आक्रोश से सहचरित था।"[20] अजय और शीला का यह अलगाव उनके यौन-संबंधों में भी दूरी ला देता है। शीला अजय को उसके पति के अधिकारों से वंचित रख सिर्फ शारीरिक सुखों के लिए उसका इस्तेमाल करना चाहती है, जिसके कारण अजय इस संदर्भ में शीला से उदासीन रहने लगता है। परिणामस्वरूप उनके संबंधों में भी खीझ और खिसियाहट आने लगती है। "मेरी अनिच्छा या मंद इच्छा उसकी वासना को असामान्य तीव्र रूप दे देती है। तब उसे लगता है, जैसे वह मधुरता के आवरण में छिपे बलप्रयोग से, उस चीज की वसूली कर रही है जो न्यायत: उसीकी है और चीज की वसूली कर रही है जो न्यायत: उसी की है और उसमें एक अजीब दर्प मिश्रित जीत की भावना जगती है। कभी-कभी इस भावना के साथ दूसरी भावना भी मिलने लगती है - अन्त में मिली पराजय से उत्पन्न खीझ और खिसियाहट की भावना। तब मानों शीला मुझे एक चरम घृणा की दृष्टि से देखती है, और चुपचाप मुझसे दूर हो जाती है।"[21]

अजय और शीला के संबंध इस तनाव के कारण अजय को बोझ लगते हैं। उसकी नजर में उनके यह संबंध अनैतिकता की धरातल पर आ गये है। वह सोचता है, "गॉड, हाड राटेन लव इज। सार्त्र का कथन इतना झूठ नहीं है, भले ही वह सौ फीसदी सूरूचिपूर्ण न हों। -- तो मेरा और शीला का संबंध अब इस स्तर

पर आ पहुँचा है।"[22] शीला के ऐसे व्यावहारिक बर्ताव के कारण अजय उससे अलग होना चाहता है। इस संबंध की बोझ से छुटकारा पाना चाहता है। "प्रयोग में मैंने एक बार शीला को सुझाया कि, हम लोग, जो एक दूसरे को अनुकूल नहीं पाते, अलग हो जाएं।"[23]

अजय और शीला की इस दूरी के कारण अजय हेम की तरफ आकृष्ट हो जाता है, और यह आकर्षण फिर से अजय और शीला के बीच की दूरी एवं अलगाव को बढ़ा देता है।

(4) स्वतंत्रता की भावना :-

प्रस्तुत उपन्यास का जो प्रमुख है, अजय, वह अपनें अस्तित्व के प्रति चेतित है। उसे अपने जीवन में गति चाहिए। उसकी चेतना उसे स्वतंत्रता का समर्थक बनाती है। "चेतना ही वह तत्व है, जो मनुष्य को स्वतंत्र घोषित करता है, उसे नितांत स्वतंत्र बनाता है।"[24] अजय इसमें स्वतंत्रता चाहता है। वह व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्त्वपूर्ण समझता है। वह ऐसी स्वतंत्रता का समर्थक है जो व्यक्ति के गुणों के विकास में बाधा नहीं बनती है। "मैं समझता हूँ कि, प्रत्येक व्यक्ति को अपने सुख-दु:ख चाहिए। दूसरों के प्रति मेरा कर्तव्य वहीं तक है, जहाँ तक वह मेरी ऊर्ध्वगति का - मेरे गुणात्मक विकास का बाधक नहीं है।"[25] तात्पर्य यह कि, अजय व्यक्ति के सुख-दु:ख, व्यक्ति-सापेक्ष मूल्यों को ज्यादह महत्त्व देता है।

अजय के अलावा दीपिका एवं हेम भी स्वतंत्रता की चाह रखती है। हेम का यह कथन उसके स्वतंत्रता की चाह को स्पष्ट करता है। "मुझे यह भावना बड़ी खराब लगती है कि, मैं किसीपर निर्भर करूँ। मुझे किसीका दबाव सहने या एहसान लेने से बहुत बुरा लगता है।"[26] दीपिका स्वतंत्रता के मामले में अमरीका में चलनेवाली 'डेटिङ् की प्रथा' का समर्थन करती है, जिसमें युवकों के साथ-साथ युवतियों को भी उतनी ही स्वतंत्रता का अधिकार होता है। लडकों की लडकियों पर अधिकार की भावना उसे बिल्कुल पसंद नहीं है, "एक लड़की उनके प्रति स्नेह और मैत्री की भावना प्रकट करती है और वे उसपर अधिकार जमाने लगते है।"[27] दीपिका एवं हेम का स्वतंत्रता के लिए यह विद्रोह उनके अहंवादी प्रवृत्ति के दर्शन है, जो उन्हें अस्तित्ववादियों में मिलाता है। क्योंकि अहं की भावना को अस्तित्ववाद में आतंरिक व्यक्तित्वविकास के लिए पूरक माना गया है। "स्व

अस्तित्वमय का गठन अहं-चेतना के रूप में ही होता है और स्वतंत्रता का अबाध उपयोग करती हुई यह चेतना ही स्व-अस्तित्वमय की विभिन्न परियोजनाओं को वैयक्तिक आधार प्रदान करती है।"[28]

(5) मृत्यु-विषयक दृष्टिकोण :-

प्रस्तुत उपन्यास में विविध पात्रों द्वारा, उनके अस्तित्ववादी विचारों द्वारा उनके मृत्युविषयक विचार प्रकट किये हैं।

दीपिका के मृत्युविषयक विचार अस्तित्ववाद के सार्त्र एवं कामू के विचारों से साम्य रखते हैं जो मृत्यु को जीवन की अंतिक परिणति मानते हैं। एपीक्यूरस की विचारों से वह सहमत है, "जब तक हम है, तब तक मौत नहीं है और जब मौत होंगी तो हम नहीं होंगे।"[29] दीपिका के ये विचार सार्त्र के विचारों के निकट जा पहुँचते हैं, जो ऐसे व्यक्तियों को 'विरूप' कहता है। उसके अनुसार ऐसे, "विरूप व्यक्ति आत्महंता नहीं हो सकता, वह बिना आशा, बिना भविष्य और बिना परित्याग के जीवित रहना चाहता है। वह अत्यंत अविष्ट भाव से मृत्यु को देखता है और यहीं बात उसे मुक्त कर देती हैं।"[30] इस प्रकार दीपिका मृत्यु को सहज रूप में देखती है। इला 'मृत्यु' से डरती है। उसे मृत्यु का भय है। वह कहती है, "मुझे तो मौत से बहुत डर लगता है, मैं तो कभी-भी मरना पसंद नहीं कर सकती।"[31] पाण्डे भी 'मृत्यु को जीवन की अनिवार्यता मान चुका है। "आज हम लोग यहाँ बैठे बातें कर रहे हैं, ताज की सार्थकता पर बहस कर रहे हैं और किसी दिन इस दुनिया में ही नहीं रहेंगे, यानी एकदम गायब हो जाएंगे।"[32] मृत्यु का भय उसे आकर्षित नहीं करता।

अजय के अनुसार मृत्यु होने से व्यक्ति की वैयक्तिक अस्तित्व की मान्यताएँ अस्पष्ट होती है, खत्म नहीं हो सकती। इसका मतलब है, अजय मृत्यु को अस्तित्व की अंतिम परिणति नहीं मानता। वह मृत्यु के बाद भी मानव को चेतना को अमर मानता है। इसके लिए वह 'मेघदूत' जैसे कालिदास द्वारा लिखे गये संदेशकाव्य और शाहजहाँ द्वारा बनवायी गयी कलाकृति 'ताज' का उदाहरण भी देता है। अपने इन विचारों से अजय अस्तित्ववादी विचारक हैडगर से नजदीक और सार्त्र से दूर चला जाता है, क्योंकि हैडगर मृत्यु को जीवन की उपयोगिता मानता है, जबकि सार्त्र मृत्यु को जीवन 'दुर्घटना एवं बेमानी मानता है।"[33]

(6) मूल्य-विघटन विरोधी संघर्ष :-

प्रस्तुत उपन्यास में अजय के द्वारा मूल्य-विघटन विरोधी संघर्ष दिखाया गया है। स्वयं डॉ. देवराज इस बात को मानते हैं। यह मूल्य-विघटन की समस्या भी द्वितीय विश्वयुद्ध का ही परिणाम है।

मूल्य के संदर्भ में सार्त्र का कहना है कि, "तुम्हारे जन्म लेने पहले जीवन कुछ नहीं है, यह तुम्हारे ऊपर है कि, उसे अर्थ प्रदान करो और मूल्य तुम्हारे द्वारा अर्थ के चयन के सिवाय और कुछ नहीं है।"[34] मतलब अस्तित्ववादी मूल्य-निर्धारण मानवीय स्थापनाओं को महत्त्व देता है।

सामान्यत: मूल्य की भावना या यह संकल्पना मनुष्य के मनोविज्ञान से संबंध रखती है। मूल्य की अगर परिभाषा देखनी हों तो वह ऐसी होगी, "यहं किसी वस्तु या अनुभव की वह विशेषता है जो हमारी अभिरूचि, अनुशंसा या एषणा की तुष्टि करती है।"[35] मूल्य का संबंध धर्म, नीति आदि बातों के साथ भी होता है।

अजय भी जीवन मूल्यों में विश्वास करता है। भले-बूरे का भेद भौतिक-अनैतिकता का भेद भी वह मानता है। "मैं सिर्फ एक ही भेद मानता हूँ, ऊँचे और नीचे, घटिया और उकृष्ट का भेद।"[36] मूल्यों संबंधी बातों को वह विज्ञान का दर्जा नहीं देना चाहता। दीपिका अजय का यह मूल्य-दृष्टिकोन बताती है कि, अजय के अनुसार, "जब हम मूल्यों की बात करें तो हमें कार्य-कारण के सवालों को ताक पर रख देना चाहिए। कार्य-कारण के प्रश्न विज्ञान के प्रश्न होते हैं, मूल्यों के प्रश्न फिलासफी यानी जीवनदर्शन के प्रश्न होते हैं।"[37] अजय मूल्यों को जिन्दगी का यथार्थ एवं वास्तविकता भी मानता है।

अजय का कहना है कि मनुष्य भौतिकी बातों का आकर्षण रखकर मूल्यों की रक्षा नहीं कर सकता। उसे भौतिक जगत् मसलन, चीजों की रूचि, उनका संग्रह ऐसी बातों में अनासक्ति बरतकर अध्यात्मिक बन जाना चाहिए। अध्यात्मिकता जिसमें, "जिन्दगी को सुन्दर और ऊँचा, अर्थपूर्ण बनाने की प्रवृत्ति और कामना भी होती है।"[38] अजय के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि, जिन्दगी को अर्थपूर्ण और ऊँचा बनाने के लिए भौतिकवाद से अनासक्ति रखनी चाहिए। तभी वह अपने जीवन में मूल्यों का विकास कर सकेगा। "जैसे-जैसे हमारी मूल्य-भावना का विकास होता है, हम कुछ चीजों के प्रति अनासक्त होते जाते हैं और कुछ में आसक्त।"[39] अजय का यह विचार उसे अध्यात्मवादी बना देता है। उसका यह अध्यात्मवाद उसे संत एवं साधुओं के नजदीक

ला देता है, जो मैत्री और करूणा के भावना को लेकर चलते है और अजय इसीमें मूल्य-भावना का विकास मानता है। "मैं संत-चरित्र की एक ही चीज ले सकता हूँ,उसमें निहीत मूल्य भावना को।"[40] अजय ऐसी मूल्य-भावना के विकास में विश्वास तो रखता है, लेकिन स्वयं की ओर से इसका पालन होगा, इस बात का उस आत्मविश्वास नहीं है। उसको अपनी सृजनात्मक बेचैनी से आकर्षण है, जिसके कारण जीवन के विकास को उपयोगी एवं पूरक होनेवाली साधु-चरित्रों की तटस्थता एवं संतुलन को वह पा नहीं सकेगा। अजय का यह निराशावाद मानवीय जीवन में मूलयविघटन के कारण है, जिसकी स्थापना के लिए स्वयं को असमर्थ देखकर निराश होता है।

निराशावादी अजय एक ओर आशावादी भी दिखायी देता है। अस्तित्ववादियों की तरह मूल्य-निर्धारण और चुनाव में वह स्वयं को एकाकी नहीं मानता क्योंकि प्लेटो, कालिदास, दांते के दर्शन की जीवनसंबंधी संवेदना उसके पास है। वह कहता है, "मुझमें और अस्तित्ववादियों में एक महत्त्वपूर्ण भेद है- मैं ज्यादा आशावादी हूँ। मैं समझता हूँ कि, मूल्यों के निर्धारण और चुनाव में मैं इतना एकाकी नहीं हूँ जैसा कि, अस्तित्ववादी समझते है क्योंकि, बुद्ध और कालिदास, प्लेटो और दांते के संपर्क से मिली संवेदना और पैमाने मेरे पास है।"[41] प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री प्लेटो साक्षात्कार के लिए आत्मज्ञानको श्रेष्ठ मानते है। "प्लेटो का मत है कि, जब तक दार्शनिक (ज्ञानी संत) राजा न बनें या राजा दार्शनिक राजा न बनें तब तक विश्व में शांति स्थापित नहीं हो सकती।"[42] अजय के मूल्य-भावना संबंधी विचार प्लेटो से मिलते है। एक ओर व्यक्तिनिरपेक्ष मूल्यों को, व्यक्तिसापेक्ष मूल्यों में जैसे कि दूसरे की प्रतिभा, दूसरों के सुख-दुःख इन व्यक्तिनिरपेक्ष मूल्यों को, स्वयं का गुणात्मक विकास जैसे व्यक्तिसापेक्ष मूल्यों में बाधा नहीं होने देना चाहता। "हमें प्रतिभा के लिए इसीलिए त्याग करना चाहिए कि, वह एक व्यक्ति-निरपेक्ष मूल्य है, एक सार्वभौम मूल्य और इसके मानी यह है कि, व्यक्तिविशेष के सुख दुःख से ज्यादा ऊँची चीजें हैं, जिनके लिए हमें जीना चाहिए।"[43] तात्पर्य, अजय के लिए जीवन के मूल्यों की रक्षा ज्यादह महत्त्वपूर्ण है, फिर चाहे वह मूल्य व्यक्ति-सापेक्ष हो, व्यक्तिनिरपेक्ष या समष्टिगत।

आधुनिक जीवन में मूल्य-विघटन के कारण यांत्रिकता, भौतिकता से भरे एक मूल्यहीन संसार का चित्र हमारे सामने है उसके खिलाफ अजय विद्रोह करते हुए कहता है, "रूस को ल्यूनिक का जितना गर्व है, उतना तॉल्स्तॉय और दॉस्ताव्हस्की का नहीं और अमरीकी जनता को जितनी ल्युनिक से स्पर्धा है उतनी उक्त लेखकों से नहीं। ल्यूनिक के मानी है साइन्स, यानी शक्ति, ताल्स्ताय और तुर्गनेव से ऐसा कौन-सा, समझने में लायक, लाभ है ? पी. जैसे व्यक्तियों के ही नहीं राष्ट्रों के जीवन में भी सबसे अहम् चीज है शक्ति -और सबसे

बड़ा कानून है लाठी। फर्क यही है कि, शक्ति के लिए जहाँ पी. मिनिस्टरों से हेल-मेल बढ़ाते है, वहाँ राष्ट्र साइन्स से।"[44]

अजय मूल्यों के विकास में संसार का आदर्श रूप मानता है।

(7) प्रेम की भावना :-

अजय मूल्यों के विकास में प्रेम की जरूरत मानता है। जिसके कारण यह उपन्यास एक रोमण्टिक उपन्यास भी है। अजय हेम के रूप में ऐसे प्यार को पाना चाहता है, जिससे उसके अस्तित्व का विकास हो। वह आत्मवादी प्रवृत्ति का है और वह प्रेम को आत्मा की जरूरत मानकर उसे भौतिकवादी एवं दुनियावी चीजों से दूर रखना चाहता है। "जिसे लव या प्रेम कहते कहते हैं, वह आत्मा की गहरी जरूरत भी हो सकती है, उसकी गिनती दुनियावी चीजों में नहीं होनी चाहिए।"[45] यहीं कारण है कि, वह प्रेम की भावना को अपने अस्तित्वरक्षा के लिए पूरक मानता है।

(8) नास्तिकता एवं निरीश्वरवादिता की भावना :-

अस्तित्ववाद में हमने देखा कि, मनुष्य और चेतना इसीको महत्त्वपूर्ण माना गया है, फिर भी अस्तित्ववादी दर्शन की दो चिंतनधाराएँ है। जिनमें से एक आस्तिक अस्तित्ववादी जो ईश्वर को मानती है और दूसरी अनीश्वरवादी जो ईश्वर को नहीं मानती है।

प्रस्तुत उपन्यास में दोनों धाराओं के पात्र हैं। नायक अजय नास्तिकवादी है। अस्तित्ववादी विचारक एवं दार्शनिकों में भी `कीर्केगार्द और जास्पर्स ईश्वर में विश्वास करते थे, हाइडेगर ने अपनी व्यवस्था में ईश्वर को जगह न दी।"[46] अजय हैडेगर की तरह एवं सार्त्र की तरह शुरू में बिल्कुल अनीश्वरवादी दिखायी देता है। उसका विचार है, "ईश्वर, आत्मा, परलोक इन्हें मानने के लिए कहीं भी संतोषप्रद साक्षी नहीं है, इसीलिए इन्हें बिल्कुल ही स्वीकार नहीं किया जा सकता।"[47] इसका मतलब है अजय उन्हीं बातों को मानता है, जो बातें अनुभूति एवं साक्षात्कार की हैं। केवल जो बुद्धि अथवा ज्ञानेद्रियों से उनका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। अजय स्वयं को अध्यात्मवादी मानता है, लेकिन अध्यात्मवादी अदृश्य ईश्वर को मानते है। अजय ऐसे अज्ञात ईश्वर को भी नहीं मानता।

ईश्वरसंबंधी धारणा में सार्त्र कहता है कि, "मानवीयता नाम की कोई ईश्वर-निर्मित वस्तु नहीं है, ईश्वरहीन संसार में मनुष्य अपनी मानवीयता स्वयं गढ़ता है।"[48] मतलब हुआ कि, सार्त्र के अनुसार मानववादी नास्तिक होते हैं, लेकिन अजय तो कहता है, "मानववादी होने का अर्थ नास्तिक होना नहीं है।"[49] यहाँ अजय सार्त्र से कुछ अलग और बौद्ध दर्शन की कुछ करीब आ जाता है, क्योंकि बौद्ध दर्शन में "बौद्ध ने विश्वघटनाओं का क्रम नियत रीति से होता है, इस मत का प्रतिपादन किया, परन्तु इसके पीछे नीत्य अनादि, अनंत तथा सर्वशक्तिमान ईश्वर का अस्तित्व मान्य नहीं किया है। बुद्ध ने मनुष्य के कर्म को ही अच्छे-बूरे परिणामों के लिए महत्वपूर्ण माना।"[50] बौद्ध मत यहाँ पर मानवीयता के संदर्भ में कुछ मात्रा में सार्त्र से जा मिलता है। अजय बुद्ध के साथ-साथ जैन दर्शन का भी समर्थन करता है जो, ईश्वर को बिल्कूल नहीं मानता। अजय ने फिर भी बुद्ध और जैन को धार्मिक करार दिया है।

निरीश्वरवादिता को लेकर अजय बौद्ध दर्शन की अपेक्षा जैन दर्शन के अधिक निकट आता है, क्योंकि "जैन मत ईश्वर को नहीं मानता।जैन मत के अनुसार ईश्वर के गुण कल्पित हैं। वे किसी आधार से प्रमाणित नहीं किये जा सकते।"[51] जैनियों के अनुसार अजय भी ईश्वर को अप्रमाणित एवं कल्पित ही मानता है। अध्यात्मवाद को लेकर अजय जैन मत का और भी समर्थक बन जाता है। अजय जिस तरह साधु-संतों की चरित्रता को मानता है, उसी तरह जैन मत, "ईश्वर के स्थान पर सिद्धों और तीर्थकरों को आराध्य तथा उपास्य मानते है। उनकी पंचपरमेष्टिकी है - अर्हत् , सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु।"[52]

इस प्रकार हम देखते हैं कि, अजय निरीश्वरवाद को लेकर तो बुद्ध और जैनों के समीप चला जाता है, लेकिन हेम के मार्मिकता से पूछने पर कि, जैन लोग आराधना- उपासना करने मंदिर जाते हैं इसपर अजय का क्या मत है ? तब अजय के मन में यह द्वंद्व चलता है कि, "पूजा और उपासना, क्या सचमुच मनुष्य के अन्दर ऐसी छिपी कोई वृत्ति है?"[53] अजय जब सोचता है कि , मनुष्यजाति आत्म-निर्भर न होकर संकटों से मुक्ति पाने के लिए ईश्वर को पूजते है, तब जीवन की निरर्थकता, अस्तित्व के संघर्ष की निरर्थकता की भावना उसे घेर लेती है।

डॉ. रामविलास शर्माजी अस्तित्ववाद सामन्तकालीन धार्मिक अंधविश्वासों के प्रभाव का हवाला देते हुए कहते हैं कि, "जब तक खुदा था, तब तक पाप-पुण्य की भावना भी थी, नैतिक आचरण के मूल्य भी थे, किन्तु जब विज्ञान ने खुदा को नैतिकता आसन से हटा दिया तब अस्तित्ववादी के लिए बडी समस्या उठ खडी

हुई। समाज में मूल्य की कोई कसौटी न रह गयी। पाप-पुण्य कुछ नहीं। मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से निर्णय करना है कि, क्या मूल्यवान (पुण्य) है, क्या मूल्यहीन (पाप) है? अंधेरे में बाप का हाथ छूट जाने पर जेसे छोटा बच्चा चीख़ उठे, वही हालत खुदा को नकारनेवाले अस्तित्ववादी की है।"[54] आज के मनुष्यजाति की यही हालत है। अजय ईश्वर को नहीं मानता लेकिन, नास्तिक रहकर भी चैन से नहीं रह सकता। वह कहता है, "नास्तिक होना कोई सुख की बात नहीं है, आसान भी नहीं है। मैंने कहा, "अपने को देवी-देवताओं से मुक्त करने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ता है।"[55]

उपन्यास के विकासक्रम में हम अजय को देखते हैं कि, जैसे-जैसे वह हेम की तरफ, उसके प्यार की तरफ ज्यादह आकृष्ट हो जाता है, वैसे-वैसे वह ईश्वर में आस्थावादी बनता जाता है। हेम मूलत: आस्तिक एवं आस्थावादी है। हो सकता है कि, हेमको पाने के लिए वह ऐसा बन गया हो, क्योंकि, उसने स्वयं यह कबूल किया है कि, प्यार उसके अस्तित्व की जरूरत है। वह यह भी इकरार करता है कि, हेम के साथ की वजह से वह आस्तिक बनता जा रहा है। वह हेम से कहता भी है, "मैंने अपने और देवी के बीच एक नारी की छाया देखी जो तुमसे बहुत मिलती-जुलती थी।"[56]

इस प्रकार अजय हेम के प्यार में खोता ही जाता है लेकिन, फिर भी वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हेम के प्यार से ज्यादह संत-चरित्रों की ऊँचाई महत्त्वपूर्ण समझता है, जिसके लिए वह हेम के आकर्षण से बचना चाहता है। इसके लिए वह अपने को असमर्थ पाकर वैष्णव देवी के शरण में चला जाता है, "माँ, मुझे हेम के इस शीतल आकर्षण से बचा लो, मुझे अपनी गोद में जगह दो।"[57]

इस प्रकार डॉ. देवराज जीने अजय जैसे पात्र के माध्यम से मूल्य-विघटन विरोधक ऐसा प्रस्तुत किया है जिसके लिए डॉ. रघुवरदयाल वार्ष्णेय कहते है, "अजय के रूप में अस्तित्ववाद आज की संक्रमणकालीन अवस्था में भी मानवविकास की ओर अभिनव चिन्तनप्रणाली का उद्घोष करता है और जीवन के सारभूत अस्तित्व को ग्रहण करने की ओर उन्मुख होता है।"[58]

प्रस्तुत उपन्यास का अजय आधुनिक युग में प्रबुद्ध व्यक्तित्व के रूप में मूल्य-विघटनविरोधी संघर्ष में, कभी-कभी अस्तित्ववाद के दार्शनिक द्वंद्व में फँसता है, जिसमें उसे जीवन भी कभी-कभी निरर्थक लगने लगता है, लेकिन, एक आशावादी प्रवृत्ति भी उसमें है जो उसे मूल्य स्थापनाओं की प्रेरणा देती है।

2. अपने-अपने अजनबी-अज्ञेय-1961

हिन्दी में अस्तित्ववादी विचारों एवं दृष्टियों के स्वागत एवं विरोध में तीव्र एकांगिता सातवें दशक में दिखायी देती है। डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर जी के मतानुसार, "यह एकांगिता वैचारिक स्तर पर अभी कुछ कम होती जा रही है और एक संतुलन-सा उत्पन्न होने लगा है। इस स्थिति में यह सुखद आश्चर्य एवं गौरव की बात है कि सन 1960 में प्रकाशित 'अपने-अपने अजनबी' में वैचारिक एवं सृजनात्मक दोनों धरातलों पर विलक्षण संतुलन का परिचय दिया गया है।"[59]

युद्ध की विभीषिका ने मनुष्यजाति की भविष्य की सुखद कल्पनाओं को नष्ट कर दिया था। जीवन में निराशा, विवशता, पीडा आदि नकारात्मक भावनाओं को भर दिया था। स्थिरता के बारे में मानवजाति में सन्देह पैदा हो गया। कुछ संवेदनशील विचारकों ने ऐसे अस्थिर जीवन और जगत् के बारे में सोचना शुरू कर दिया। उन्हें लगा कि जीवन में स्थिर तत्त्व केवल दो ही हैं, जन्म और मृत्यु। अज्ञेय लिखित 'अपने-अपने अजनबी' यह उपन्यास ऐसा ही मृत्यु-साक्षात्कार का पहला उपन्यास माना गया है। "वह उनका प्रथम आधुनिक उपन्यास है और हिन्दी का प्रथम 'अस्तित्ववादी उपन्यास' है। अत: यह उपन्यास अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के संदर्भ को लेकर अध्ययन के लिए लिया जा सकता है।"[60]

प्राय: सभी के ने स्वीकार किया है कि प्रस्तुत उपन्यास 'मृत्यु से साक्षात्कार' का आख्यान है।

प्रस्तुत उपन्यास तीन खण्डों में बाँटा गया है। प्रथम खण्ड में एक 'अनाम' देश के बर्फीले वातावरण में 'सेल्मा' नाम की वृद्धा लकडी के मकान में रहती है जो कैन्सर की बीमारी से पीडित है। 'बर्फीले वातावरण' और 'योके पर जर्मन सैनिकों ने बलात्कार किया' इससे लगता है कि, यह प्रदेश युरोप का कोई जर्मन पराजित देश होगा। योके सेल्मा के साथ उस कठघर में दुर्भाग्यवश अटक जाती है जो बर्फ के नीचे दबा हुआ है।

दूसरे खण्ड में सेल्मा के अतीत के जीवन का फ्लैशबॅक है। इसमें सेल्मा, उसका प्रेमी यान, फोटोग्राफर आदि पात्रों का अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष दिखाया गया है। तीसरा खण्ड योके की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है, जिसमें उपन्यास दुखान्त बन जाता है। उपन्यास पर शुरू से अंत तक मृत्यु की छाया मँडराती रहती है।

पूर्व और पश्चिम में जो जीवनविषयक दृष्टिकोण है, उसकी अभिव्यक्ति ही शायद अज्ञेयजीका, इस उपन्यास लिखने के पीछे उद्देश्य रहा होगा। "तरूणी योके पूर्व की जीवनदृष्टि है तथा ऱ्हासोन्मुख सेल्मा पश्चिमीय पतनशील जीवनदृष्टि है।"[61] इन दो पात्रों के जरिए मृत्यु के साक्षात्कार को दिखाकर 'पश्चिमी दर्शन की अपेक्षा पूर्व का दर्शन श्रेष्ठ सिद्ध करना' यही प्रयास अज्ञयेजीका यहाँपर दिखायी देता है। विवश योके का जगन्नाथन् जो भारत के नागरिक का प्रतिनिधी लगता है, उसके हाथों में दम तोड देना लेखक का यह संकेत है कि, "युरोप के मरणोन्मुख दर्शन को भारत का सांत्वनशील दर्शन ही सहारा दे सकता है।"[62]

इस प्रकार अज्ञेयजीने अपना यह उद्देश्य निम्नतर अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों को उठाकर इस उपन्यास में स्पष्ट किया है।

(1) अकेलापन :-

अकेलेपन की पीडा को अज्ञेयजी ने प्रस्तुत उपन्यास में सेल्मा और योके इन दो पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अकेलेपन की भावना में व्यक्ति अपने आस-पास के व्यक्तियों के अस्तित्व से कोई मायने नहीं रखता। "यह प्रतिमा दूसरे व्यक्तियों के साथ स्वयं को अपरिचित महसूस करती है।"[63] ऐसी स्थिति में व्यक्ति मनुष्यों की भीड में भी अकेलापन महसूस करता है।

अज्ञेयजीने 'अपने-अपने अजनबी' में इस 'अकेलेपन' की भावना को सशक्त ढंग से चित्रित किया है। योके ओर सेल्मा दोनों परिस्थितीवश एक दूसरे के साथ रहने के लिए विवश हैं। सेल्मा के बच्चे नीचे मैदान में चले गये हैं। उस कठघरे में वह अकेली है। कैन्सर से आनेवाली मृत्यु को वह अकेले में भेंट करना चाहती है। "मैंने चाहा था कि, अन्तिम दिनों में कोई मेरे पास न हों।"[64] अपनी इस अकेलेपन की चाहना में योके के रूप में आयी हुअी बाधा को वह ईश्वर की मर्जी समझकर 'समझौता' कर लेती है। लेकिन योके को यह समझौता मंजूर नहीं है। कैन्सर से जूझती सेल्मा को वह देखती है तो मृत्यु की कल्पना से उसे डर लगने लगता है। सेल्मा का साथ उसे भयभीत कर देता है और वह उससे घृणा करने लगती है। वह सेल्मा से अकेले रहना चाहती है, "सोचती हूँ तो केवल एक ही बात कि, कब यह साक्षीदार हट जाएगा और में इस कब्र में अकेली रह जाऊँगी।"[65]

मृत्यु का डर योके को और भी अकेला बना देता है। "मृत्यु के साथ अकेला होना-मृत्यु के सम्मुख अकेला होना - मृत्यु में अकेला होना- इस चरमं अकेलेपन और स्वयं मृत्यु में क्या अन्तर है ?"[66] ऐसी अवस्था में उस बंद अंधेरे कठघरे के अकेलेपन में योके को एक मठवासी भिक्षु की बात याद आने लगती है, जिसने आजीवन सुरंग खोदते-खोदते अन्त में एक ऐसी एकान्त गुफा में प्रवेश किया जहाँपर उसे किसी दूसरे साधक की सिर्फ चीजें मिल गयी थी "जो उस एकान्त में मर गया था।"[67] योके को अपना अकेलापन उसी साधु के असहाय पुरूषार्थ-सा विवश प्रतीत होता है।

(2) अजनबीपन :-

'अजनबीपन' यह शब्द परायेपन की भावना का एहसास दिलाती है। इसे अंग्रेजी में 'Alienation' कहते हैं। "वस्तुत: यह लैटिन शब्द 'एलाइनस 'से जुडा है जिसका अर्थ दूसरे व्यक्ति या स्थान से संबंधित है और इसका मूल शब्द है, 'एलियस', जिसका तात्पर्य है, पराया या दूसरे का।"[68] मनुष्य का अपने से या इस संसार से कट जाने का एहसास मतलब 'अजनबीपन' की भावना होती है। अस्तित्ववादी दर्शन में इस भावना पर मूलत: सोचा गया है। अज्ञेय का प्रस्तुत उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' में अजनबीपन प्रचुर मात्रा में मिलता है। "हिन्दी में अजनबीपन शब्द का सार्थक और सृजनात्मक प्रयोग सबसे पहले 'अज्ञेय' ने अपने उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' मे किया है।"[69]

युवती योके और वृद्धा सेल्मा बर्फ से ढ़के कठघरे में , मौत के सन्नाटे में एक दूसरे के लिए अजनबी हो गयी है। सेल्मा योके को कहती है, "अभी तो हम-तुम भी अजनबी से हैं। पहले हम लोग तो पूरी पहचानकर लें।"[70] सेल्मा तो योके से अजनबीपन नहीं रखना चाहती, क्योंकि उसे अजनबीपन से पनपनेवाले अकेलेपन का डर है। सेल्मा कहती है, "निरे अजनबी डर के साथ कैद होकर कैसे रह सकता है ?"[71] सेल्मा अपने इस अकेलेपन एवं अजनबीपन को कम करने के लिए योके को अपना पूरा अतीत बता देती है। इससे स्पष्ट होता है कि उसे अपने अतीत में 'अजनबीपन की निस्सारता' को भुगतना पड़ा है। इससे वह आत्मग्लानि का शिकार भी होती है।

मृत्यु से पीडित सेल्मा से योके अजनबीपन महसूस करती है। वह उसे 'बुढ़िया' इस शब्द से भी संबोधित करती है, जो परायेपन का एहसास दिलाता है। योके कठघरे से बाहर निकलती है, लेकिन उसका प्रेमी पॉल उसे धोखा देता है। "वह बाहर आकर और भी अजनबी बन जाती है।"[72] अपने पॉल से अजनबीपन महसूस करने के बाद जब जर्मन सैनिक उसपर बलात्कार करते हैं तब अपना नैतिक विवेक कायम रखने के लिए वह अजनबी जगन्नाथन् को अपना बना लेती है और उसकी बांहों में मर जाने में अपने जीवन की सार्थकता समझती है। उपन्यासकार अज्ञेयजीका उद्देश्य शायद यही है कि, "मृत्यु के साक्षात्कार में मनुष्य की मानसिक अवस्था बदल जाती है। उसके मस्तिष्क का संतुलन अस्त-व्यस्त हो जाता है, तथा 'अपने अजनबी' और 'अजनबी अपने' किस तरह हो जाते है।"[73] हो सकता है, ऐसा विचार भी अज्ञेय जीका उद्देश्य हों।

अज्ञेयजी के प्रस्तुत उपन्यास का यह अजनबी पात्र याके में निहीत है जो आधुनिक जीवन की प्रतिनिधी है, जिसके "मार्मिक अंत में आधुनिक युग जीवन के एकाकीपन या अजनबीपन की विडंबना तथा विषमता ध्वनित होती है।"[74]

(3) जीवन की निरर्थकता एवं सार्थकता का दृष्टिकोण :-

उपन्यास के दो प्रमुख पात्र सेल्मा और योके दोनों के जीवन-दृष्टिकोनों में भिन्नता है। कैन्सरपीडित सेल्मा ने अपने अतीत में अपना जीवन जी लिया है। अब वह मृत्यु का ग्रास बनी हुअी है, यह उसे पता है, जिसके कारण, "वह अपने जीवनको व्यर्थ समझकर प्रत्येक क्षण मृत्यु की प्रतीक्षा करती हुअी दिखलायी पडती है।"[75] उसे जीने में कोई आकर्षण नहीं रहा, इसीलिए 'मृत्यु' में ही जीवन की सार्थकता को उसने मान लिया है, "मैं भी चाहती हूँ कि, मर जाऊँ, पर मेरे चाहने की तो अब जरूरत नहीं हैं। मैं जानती हूँ कि, बहुत दिन बाकी नहीं है।"[76]

'योके' पहले तो मृत्यु को स्वीकार नहीं करती, क्योंकि उसके अनुसार मृत्यु जीवन का खण्डन है। वह जीना चाहती है, इसीलिए मृत्यु से लडकर कठघरे से बाहर आती है, लेकिन जर्मनों द्वारा वेश्या बनाने पर अपने नैतिक संस्कारों को टुटता देख वह मृत्यु का वरण जगन्नाथन् के बांहों में कर लेती है। "शरीर परवश हो सकता है, लेकिन संदियों से प्राप्त संस्कारजन्य नैतिक विवेक झुकना नहीं जानता है। जो पुरूष वेश्यागामी नहीं है,

वही योके के लिए अच्छा आदमी है। उसकी गोद में अपने को समर्पित करके वह अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। यहाँ जीवन की सार्थकता उस मृत्यु में है, जिसका वरण योके ने स्वयं अपनी स्वतंत्र चेतना से किया है।"[77] इस प्रकार अज्ञेयजीने निरर्थक जीवन को सार्थकता प्रदान करनेवाला एक ही माध्यम 'मृत्यु' माना है। उनका विचार है कि, "मृत्यु जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि जीवन को रसमयता और अर्थवत्ता वही देता है।"[78] यहाँ पर अज्ञेयजी मानववादी अस्तित्ववादियों के विचारों के विरोधी लगते हैं क्योंकि, मानववादी अस्तित्ववादियों के अनुसार, "मृत्यु वह वस्तु नहीं है जो जीवन को अर्थ देती है, वह जिन्दगी के सारे मतलब छीन लेती है।"[79] बिल्कुल इसके विपरीत अज्ञेयजी ने मृत्यु को जीवन को सार्थक बनाने का साधन कहा है।

(4) ईश्वरवाद एवं निरीश्वरवाद :-

आलोच्य उपन्यास में अस्तित्ववाद की दो धाराएँ दिखायी गयी है। ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी। अनीश्वरवादिता का समर्थन करते-करते यह उपन्यास अंत में ईश्वरवाद की ओर भी झुकता दिखाई देता है।

"अस्तित्ववाद के आस्तिक और नास्तिक दो संप्रदाय है।"[80] इन दो संप्रदायों को इस उपन्यास में योके और सेल्मा के माध्यम से स्पष्ट किया है। सेल्मा ईश्वर की सत्ता को मानती है। सारी सजीव सृष्टि का निर्माता वह ईश्वर को ही मानती है, जिसके कारण वह आस्थावादी बन गयी है। "जब मैं अपने से अलग एक सजीव उपस्थिती के रूप में तुम्हारी बात सोचती हूँ - तब मुझे एकाएक निश्चितरूप से लगता है कि, ईश्वर है - कि सजीव उपस्थित का नाम ही ईश्वर है- कोई भी उपस्थिती ईश्वर है।"[81] मनुष्य का जीना या उसकी मृत्यु दोनों को वह ईश्वर की मर्जी मानती है। मौत को वह ईश्वर का दूसरा रूप मानती है।

योके नास्तिक अस्तित्ववादियों का समर्थन करती है। अज्ञेयजीने सार्त्र का अस्तित्ववादी दृष्टिकोण योके के माध्यम से ही स्पष्ट किया है, जो ईश्वर की सत्ता न मानते हुए मनुष्य की स्वतंत्रता को अंतिम मानता है। योके भी स्वतंत्रता की पुजारी है। लेकिन दुनिया जब योके को मरने के लिए बाध्य कर देती है तब ईश्वर के बारे में शायद सेल्मा के विचार उसे सही लगने लगते है। यद्यपि, मृत्यु उसकी विवशता थी, जिसके कारण दुनिया और ईश्वर को वह अन्त में माफ कर देती है, "साक्षी जगन्नाथन् को एकाएक ध्रुव निश्चय हो आया कि, योके ने कहा था, "ईश्वर को।"[82] योके का अस्तित्ववादी दर्शन प्रथम हैडगर, सार्त्र आदि दार्शनिकों के दर्शन से मेल

खाता है और अन्तिम क्षणों में यह योके का अस्तित्ववादी दृष्टिकोण कीर्केगार्द, जास्पर्स आदि दार्शनिकों के मत का समर्थन करता दिखायी देता है। "आस्थावादी दार्शनिक (कीर्केगार्द, जास्पर्स आदि) मनुष्य का अस्तित्व यद्यपि स्वतंत्र मानते हैं, तथापि वे यह भी मानते है कि, ईश्वर हमारे अंतरम् में विद्यमान है।"[83]

योके जब कठघरे में मृत्यु से जूझती है तब वह ईश्वर के प्रति आक्रोशित हो जाती है, क्योंकि कहीं-न-कहीं सेल्मा के आस्तिक विचारों के लिए उसके मन में जगह थी। लेकिन जीजिविषा के कारण उसे मृत्यु मान्य न थी जिसके कारण वह ईश्वर को गालियाँ भी देती है, यह उसके विवशता एवं असहायता के लक्षण है, "ईश्वर के प्रति आक्रोशमयी अनास्था ने मनुष्य को पूर्णत: असहाय बना दिया है।"[84]

अंत में मृत्यु को सार्थक जीवन की परिणिती मानकर वह नास्तिक अस्तित्ववादी बन जाती है क्योंकि, "नास्तिक अस्तित्ववाद मृत्यु में मनुष्य की अन्तिमता को मानकर चलता है।"[85] इस प्रकार अज्ञेयजी इस उपन्यास में कभी आस्थावादी तो कभी अनास्थावादी दर्शन के विरोधाभास में दिखायी देते है। लगता है, "उनका व्यक्तित्व किसी भी पुराने या नये वाद या जीवन-सिद्धांत के आगे पूरा-पूरा समर्पित नहीं हो सका है। वह अनेक वादों के सत्यों को स्वीकार कर उन्हें अपने व्यक्तित्व के माध्यम से एक नया रूप देना चाहते है।"[86]

(5) वरण की स्वतंत्रता :-

वरण की स्वतंत्रता को इस उपन्यास में अस्तित्ववादी दार्शनिक विचार स्तर पर उठाया गया है। "सार्त्र के अनुसार अस्तित्ववाद का चरम प्रतिमान स्वतंत्रता है जो परस्पर एक -दूसरे के लिए समान महत्तव की वस्तु है।"[87] वरण का मतलब है 'चुनना।' अपने स्वयं के निर्धार पर किसी बात का चयन करना ही वरण की स्वतंत्रता माना जाता है। अस्तित्ववादी सार्त्र ने मनुष्य के जीवन में इस बात को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। उसके इस मत का समर्थन करनेवाली 'अपने-अपने अजनबी' की योके भी जगन्नाथन् को अपने मन से चुनकर इस बात को उठाती है कि उसकी वरण की स्वतंत्रता के प्रतिमान के लिए जगन्नाथन् महत्त्वपूर्ण बन जाता है। सार्त्र स्वतंत्रता, चयन की स्वतंत्रता के बारे में कहता है कि मनुष्य अपनी प्रतिमा, अपना वजूद वरणद्वारा ही बना पाता है। उसके अनुसार, "अस्तित्ववादी मानववाद मनुष्य को यह स्मरण कराता है कि एकमात्र वह स्वयं नियमों का निर्माता है और अपनी असहाय अवस्था में ही वह अपने लिए निश्चय करेगा।"[88] योके ने भी यही किया।

सेल्मा मनुष्य की स्वतंत्रता को नहीं मानती। वह मानववादी नहीं है। अपनी स्वतंत्रता को उसने ईश्वर को सौंपा है। यहीं कारण है कि वह निश्चित भाव से मर जाती है। कोई ग्लानि उसमें नहीं है। "सेल्मा मर जाती है - प्रशान्त और तृप्त क्योंकि वह जानती थी कि, 'वरण की स्वतंत्रता कहीं नहीं हैं।"[89] उसका यह कथन इस बात को स्पष्ट कर देता है -- "स्वतंत्रता कौन स्वतंत्र है ? कौन चुन सकता है कि वह कैसे रहेगा ? या नहीं रहेगा ?"[90] लेकिन योके इस स्वतंत्रता को मानती है। 'वरण' करना चाहती है। लेकिन चुनती है एक 'हरामी मौत'। इसका मतलब है कि योके के लिए 'वरण की स्वतंत्रता' ने सिर्फ एक 'हरामी मौत' दी है, जो उसकी विवशता है। मतलब नियति के आगे डॉ. अज्ञेयजी की 'वरण की स्वतंत्रता' नाममात्र बनकर रह गयी है।

(6) मृत्युबोध / मृत्युसाक्षात्कार :-

हमने देखा है कि 'अपने-अपने अजनबी' को 'मृत्यु के साक्षात्कार' का पहला उपन्यास माना गया है। "मृत्यु के इस आतंक से ही उपन्यास का आरंभ होता है। 'मृत्यु' का आतंक ही उपन्यास की मुख्य कथावस्तु है।"[91] योके और सेल्मा दोनों बर्फ से ढ़के एक कठघरे में कैद है। वहाँ पर सिर्फ मृत्युगन्ध ही प्रमुख है। 'मृत्यु को आधार बनाकर उन्होंने पूर्व और पश्चिम की जीवन दृष्टि को उजागर किया है।उनके 'एक बूँद सहसा उछली' में एक कथन से इस बात को और भी दृढ़ता आ जाती है। उसमें वे मान्य करते है कि, "प्रस्तुत उपन्यास की वस्तु दो सत्य घटनाओं पर आधारित है। काठघर वाली सूचना उन्हें अपने एक स्वीडिश मित्र से मिली थी, तो जगन्नाथन्‌वाले वृतान्त का आधार उन्हें लखनऊ के एक मित्र से प्राप्त हुआ था।"[92]

योके और सेल्मा दोनों मृत्यु को अपनी जिन्दगी में दूसरी बार वरण करती है। वरण करती है, इसकी अपेक्षा यह कहना उचित होगा कि परिस्थिती के सामने वह झुक गयी। मनुष्यजाति की इस विवशता को सेल्मा ने अपने अतीत में देखा है। इसीलिए कठघरे में कैन्सर से पीडित वह मृत्यु को सामने देख उससे डरती नहीं। उसने जिस 'बोध' को पहचाना है योके उससे परिचित नहीं है जिसके कारण वह मृत्यु से डरती है। वह सोचती है कि, कारण-कार्य की संगति के बिना आयी हुअी मृत्यु अपने जीने का अपमान है। "बर्फ के नीचे दबकर मर जाना भी मर जाना है। लेकिन यह दबकर मरना तो है - उसमें कार्य और कारण की संगति तो है।लेकिन यह बिना दबे, बिना बर्फ को छुए भी अहेतुक मर जाना - यह मानों हमारे जीवन के अनुभव का अपमान करता है।"[93]

योके का यह आक्रोश वास्तव में पश्चिमी संकटग्रस्त वातावरण का कारण है जो अज्ञेयजी का है। "पश्चिम के दबाव के कारण उनकी दृष्टि कुछ आक्रान्त हो जाती है।"[94]

अज्ञेयजी का मृत्युविषयक यह दृष्टिकोण उनपर पश्चिम का प्रभाव है। क्योंकि भारतीय लेखक और पश्चिमी लेखक के सामने 'मृत्यु'का रूप समान नहीं है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि 'मृत्यु' की जिस भयंकारिता को पश्चिमी लेखकों ने देखा, उसे भारतीय लेखकों ने नहीं। प्रस्तुत उपन्यास अज्ञेयजी ने युरोप में लिखा है, जो दूसरे विश्वयुद्ध का सहभागी देश रहा है। एक आलोचक के अनुसार '1960 में वे यूरोप गये और 'पियेर कववीर' के मठ में रहे। यहाँ से प्राप्त जीवन-दृष्टि को व्यक्त करने के लिए अज्ञेय ने 'अपने-अपने अजनबी' की सृष्टि की।"[95] हो सकता है, उनके इस उपन्यास का विषय भी उन्होंने वहाँ के वातावरण का मुख्य ही चुना हो।

(7) अस्तित्व के लिए संघर्ष :-

व्यक्ति वैयक्तिक धरातल पर जो संघर्ष करता है, अस्तित्व के लिए उसका यह संघर्ष उसकी चेतना का प्रतीक है। व्यक्ति के अस्तित्व की चेतना उसके मृत्यु तक निरंतर विकासशील होती है। अस्तित्ववादियों के इस जगत् में संघर्ष अटल है। योके और सेल्मा ने भी अपनी जिन्दगी में अस्तित्व की रक्षा के लिए दो बार संघर्ष किया है। अतीत में बाढ़ के संकट में ग्रस्त सेल्मा, उसका प्रेमी यान, फोटोग्राफर आदि पात्रों का भी अस्तित्व के लिए संघर्ष दिखायी देता है। फोटोग्राफर बाढ़ का पानी पीकर जीने की कोशिश करता है, लेकिन पेशीच से तडपता वह भी नियति के सामने झुककर आत्महत्या कर लेता है। उसका अस्तित्व का संघर्ष उतना तीव्र नहीं जितना कि सेल्मा और योके का। यान भी फोटोग्राफर की जलती दुकान के आँच पर मांस पकाकर अपनी भूख मिटाता है। यह उसके अस्तित्वरक्षा के संघर्ष का प्रमाण है।

सेल्मा अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए स्वार्थवश होकर बाढ़ में घिरे लोगों की सहायता करने की बजाय उन्हें लुटना चाहती है। दूसरी बार मृत्यु के सामने हार जाती है और उसका अस्तित्वसंघर्ष कुछ फीका पड जाता है।

योके भी मृत्यु से तडपती सेल्मा को देखकर अपनी मृत्यु के भय से छुटकारा पाने के लिए स्वार्थवश होकर सेल्मा का गला घोंटना चाहती है। "मेरे हाथ अवश से बुढ़िया की गरदन की ओर बढ़ गए और मैं

मानों केवल उसकी स्वचलित गति की साक्षी हो गयी।"[96] इस प्रकार उपन्यास का हर पात्र अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत दिखायी देता है, एक दूसरे के लिए अजनबी बन जाता है, "हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है, अर्थात् अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है और ऐसा करने में उसे कभी-कभी दूसरों के मार्ग में बाधक बनना पड़ता है। हर व्यक्ति दूसरे को अपना साधन बनाना चाहता है। उसपर शासन करना चाहता है।"[97] योके ने यह संघर्ष तीव्र मात्रा में किया। अस्तित्वरक्षा की प्रेरणा से प्रेरित होकर उसने मृत्यु को स्वयं की मर्जी से चुना और जीवन के प्रति गहरी आस्था प्रकट की। "मैंने आदमी चुना-अच्छा आदमी। उसमें मैं जियूँगी।"[98]

जर्मनों द्वारा बलात्कारित होकर भी योके स्वयं को 'ईसा' की माँ मरियम मानती है, जिसको दुनिया ने वेश्या करार किया था जबकि इसमें मरियम का कोई दोष नहीं था। ख्रिस्त धर्म में वह सबसे पवित्र एवं सुशील स्त्री आज तक मानी जाती है। "ईसा की माँ मरियम का योसेफ से वाग्दान के बाद उनसे सहवास से पहले पवित्र आत्मा के द्वारा मरियम गर्भवती हो जाती है। योसेफ नीतिमान होने के कारण वह मरियम की बेइज्जती नहीं करना चाहता। इसीलिए वह उसे गुप्तरूप से छोडने का विचार करता है, तभी प्रभु का दूत सपने में आकर उसे बताता है कि, वह ऐसा न करे। मरियम का वह अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें, क्योंकि उसके कोख में जो गर्भ है, वह पवित्र आत्मा की है, उसे पुत्रप्राप्ति होगी। उसका नाम वह येसू रखें।"[99] इस प्रकार मरियम एक पवित्र माँ के प्रतिमा में बँधी रही। उसी प्रकार योके भी मरकर स्वयं का अस्तित्व मरियम की तरह पवित्र प्रतिमा के रूप में सुरक्षित रखना चाहती है। उसका प्रस्तुत कथन उसकी इस बात को स्पष्ट करता है, "मैं मरियम -ईसा की माँ-ईश्वर की माँ मरियम-"[100]

(8) क्षणवाद :-

समय को अगर हम बाँटते-बाँटते चले जाए तो अंत में समय का अभेद्य और अविभाज्य अंग रहता है, उसे हम 'क्षण' कहते है। भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में क्षण का स्वरूप अलग-अलग है। अस्तित्ववादी विचारधारा में क्षण को विशेष महत्व दिया गया है। "पश्चिम में पिछले दशकों में जिस अस्तित्ववाद की धूम रही है, क्षणवाद उसीका एक अंग है।"[101]

भारतीय क्षणवाद कहता है कि, "जगत् और जगत् के द्रव्य क्षणिक है - उनकी सत्ता अचिर है।"[102] भारतीय तत्वशास्त्र के अनुसार क्षणवाद मनुष्य के लिए ऐसा है कि वह क्षण-क्षण में जीवित रहता है तथा प्रत्येक क्षण में वह अपने आपको पुनर्सज्जित करता है।

यह क्षणवाद आशावाद को पल्लवित करता है। वह परिवर्तनशील क्षणवाद है। लेकिन अपने अपने अजनबी' की योके का क्षण शुद्ध वर्तमान है। भारतीय क्षणवाद में जगत् और क्षण् का जो संबंध है, योके के अनुसार वही क्षण "संसार से मुक्त"[103] है। दूसरों के लिए यह क्षण उसके अनुसार "काल-सापेक्ष"[104] है लेकिन स्वयं के लिए उस कठघरे में यही क्षण "काल-निरपेक्ष"[105] है। इस प्रकार की निराशावाद को लेकर हम कह सकते है कि, "अज्ञेयजी की जीवन-दृष्टि में जो क्षणवाद दिखायी देता है, वह पश्चिमी दर्शन से प्रभावित है।"[106]

इस प्रकार हम देखते हैं कि, उक्त उपन्यास के पात्रों द्वारा अज्ञेयजीने 'मृत्यु'की बात को प्रमुख बनाकर बाकी निराशा, अकेलापन, अजनबीपन, क्षणवाद, वरण की स्वतंत्रता आदि अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों को उठाया है।

डॉ. चंद्रकान्त बांदिवडेकरजी के अनुसार, "अस्तित्ववाद की शक्तियों को नजरअंदाज न करते हुए भी उसकी सीमाओं से मुकाबला जितनी बड़ी शक्ति के साथ अज्ञेयजीने 'अपने-अपने अजनबी' में किया, उतना नवलेखन में नहीं हुआ।"[107] उनके अनुसार, "अज्ञेय के चिंतन का चरमविकास 'अपने-अपने अजनबी' ने हिन्दी को वैश्विक स्तर पर रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।"[108]

संक्षिप्त में 'अपने-अपने अजनबी' मृत्युसे साक्षात्कार करा देनेवाला एक प्रभावी उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतीय-यूरोपीय दृष्टिकोण को पात्रों पर आरोपित करके इसकी कलात्मकता को वृद्धिंगत किया है। इसमें योकें और सेल्मा को अज्ञेय ने इसीलिए चुना है कि मृत्युबोध के प्रति भारतीय मन में जिज्ञासा नहीं है। पश्चिमी मन में मृत्यु-बोध के प्रति जिज्ञासा पारिवारिक विघटन और युद्ध के कारण उत्पन्न हुओ है। मृत्यु-संकट को विश्वसनीय बनाने के लिए बर्फानी प्रदेश की कल्पना की गयी है। विदेशी चरित्रों की सहायता ली गयी है। योके और सेल्मा के मृत्यु-विषयक अनुभव उनके वैयक्तिक चिंतन, पर आधारित है। बाह्यस्थिति इस चिंतन के लिए पोषक बनी है। सेल्मा एक सामान्य दूकानदार है। प्रत्यक्ष जीवन से उत्पन्न सहज- चिंतन को छोडकर किसी प्रकार

का ज्ञान उसके पास नहीं है। योके अधिक प्रबुद्ध है। बर्फ की तुफान में कैद दो भिन्न विचारधारा के व्यक्तियों की यहाँ परस्पर टकराहट उनके व्यक्तित्वों में है। योके जवान होकर भी मृत्यु की आशंका से भयभीत रहती है। बर्फ के साथ पूरी चट्टान गिरने की आशंका से योके भयाक्रान्त होती है। कैंसर से ग्रस्त बूढ़ी महिला सेल्मा आनेवाले क्रिसमस की तैयारी में जुटी है, परंतु तब तक जीना भी उसके लिए मुश्किल है। फिर भी मृत्यु के भय से वह भयभीत नहीं होती है। इस उपन्यास में अस्तित्ववादी विचार-सूत्रों के साथ-साथ अस्तित्ववादी मनोविज्ञान का भी कलात्मक प्रयोग किया गया है। 'अपने-अपने अजनबी' में व्यक्तित्व और उसके वैचारिक प्रबुद्धता से अनुभव का एक विश्व खडा करके, उसका विश्लेषण किया गया है।

3. लाल टीन की छत-निर्मल वर्मा-1974

हमने देखा कि, अस्तित्ववादी दर्शन दो विश्वयुद्धों की विभिषिका से प्रभावित मनोदशा है। अस्तित्ववादी चिंतन आज के आधुनिक जीवन का संकटबोध है। उस संकटबोध से मनुष्यजाति में उभरी एक जीवनदृष्टि है। यह संकटबोध है, मूल्यों का विघटन, यांत्रिकीकरण और भौतिकता की प्रवृत्ति। परिणामस्वरूप जीवन में निराशा, निरर्थकता, घुटन, पीडा, संत्रास, भय, आतंक इ. भावनाएँ निर्माण हुई। इन्हीं बातों पर आज का अस्तित्ववादी चिंतन सोचता है। डॉ. नगेन्द्रने इस संदर्भ में लिखा है, "अध्यात्मिक, आधुनिक युग के प्रतिनिधी जिस जीवनदर्शन का विकास हुआ है। इसे अंतर्मुख चिंतकों ने 'अस्तित्ववाद' और बहिर्मुख विचारकों ने 'निराशावादी वैज्ञानिक मानववाद' कहा है। सामान्य रूप से इस जीवनदर्शन को आधुनिकता के सूत्रबद्ध लक्षण के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।"[109]

इस मूलत: पश्चिमी चिंतनधारा का विकास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य पर भी हुआ है। निर्मल वर्मा, अज्ञेय, डॉ. देवराज उपाध्याय जैसे लेखकों ने अपने साहित्य में इस दार्शनिक चिंतन को महत्त्व दिया है। उनका यह लेखनप्रयास ऐसे लगता है, जैसे एक हिन्दी लेखिका 'श्यामविमल' के अनुसार, "आदमी को आदमी बनाए रखना, उसे भौतिकी रूप से पूर्णतया न दब जाने देना -- आज के साहित्य के सामने असली चुनौतियाँ हैं।"[110] निर्मल वर्मा लिखित उपन्यास 'लाल टीन की छत' भी इसी कोटि में आता है। प्रस्तुत उपन्यास की पात्र 'काया' को लेकर उपन्यास के सभी पात्र अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों से गुजर रहे हैं। यहाँ अस्तित्ववादी दर्शन एक किशोरवयीन लडकी के मनोदशाओं के वर्णन में चित्रित हुआ है, जो बचपन की दहलीज से जवानी में कदम रख

रही है। यह लडकी काया ऐसी सीमा पर खडी है, जिसके पीछे बचपन छुट चुका है और आनेवाला समय अनेक संकतों और संदेशों से भरा है। इस दौरान वह जो अकेलापन, अलगाव, अजनबीपन, अज्ञात भय, आतंक, पीडा, ऊबकाई एवं संत्रास आदि मनोदशाओं से गुजरती है, उसका सार्थ चित्रण इस उपन्यास में निर्मलजीने किया है।

(1) अकेलापन :-

डॉ. बांदिवडेकर जी ने तो इस उपन्यास के सभी पात्रों को "अकेलेपन के द्वीप"[111] कहा है। इस भावना में व्यक्ति अपने आस-पास के परिवेशगत अनुभूतियों को अपनी चेतना में परिवर्तित करता है। उसके बाद वह उस व्यक्ति द्वारा चिंतन में लाकर उसकी नकारात्मक सोच से वह अंतर्मुख बन जाता है, उसमें वह आन्तरिक एकाकीपन की भावना को महसूस करने लगता है। "सर्वप्रथम अनुभवप्रवाह, चेतनाप्रवाह के रूप में परिवर्तित होता है और चिन्तन या विचार-क्रम के साथ समन्वित होकर 'आन्तरिक एकालाप' का स्वरूप ग्रहण करता है।"[112] काया ने भी अपने अकेलेपन के ईर्द-गिर्द में जो रहस्यात्मक एवं भयावह अनुभवों का जाल बुन लिया है, जिसके मोहजाल एवं भयावह अनुभवों का तथा भुल-भुलैय्या की तरफ वह ऐसी सम्मोहित हो गयी है, जिसमें वह नथवाली औरत, मंगतू, बीरू आदि पात्रों के एक खास आकर्षण से बेचैन हो उठती है, "वह सोचने लगती- यह बेचैनी, फिर बेचैनी पर छिलके-सा लिपटा हुआ सुख। वह छिलका हटाती, तो भीतर छिपी हुअी एक चाहना सिर उठाती- गले में फँसी हुई सुबकी, जो तय न कर पाती कि, सुख की तरफ जाए या बेचैनी की तरफ, और बीच गले में फंसी रहती।"[113]

काया पहाडों में माँ के साथ रहती है। उसके पिताजी दिल्ली में रहते हैं। वे साल में एक बार आते हैं। उनके 'न होने' के एहसास काया के मन में इतना गहरा आघात पहुँचाया है कि, उनका आना भी उसे 'न आने' जैसा लगता है। उसकी माँ हमेशा बीमार, बिस्तर पर पडी रहती है। उसका दिन-ब-दिन 'बड़ा होना' भी काया को रहस्य ही लगता है, वह यह नहीं समझ पाती कि, माँ बनना क्या होता है। माँ का साथ उसे ठीक से नहीं मिलता है। छोटा भाई भी स्वयं इस 'अकेलेपन' से पीडित है। जोसुआ जो उनके घर के नीचेवाले हिस्से में रहती है, वह भी बरसों से अकेली रह रही है। उसका व्यक्तित्व भी काया और छोटे को रहस्यमय ही लगता है। पहली लडाई के समय वह वहाँ पहाडपर आयी है। लडाई के बाद उसके पति विदेश लौट गये,लेकिन जोसुआ उनके साथ न लौटकर अकेली उन पहाडों पर रह गयी है। काया के पिता उनके परिवार को अकेला छोडकर दिल्ली चले

जाते हैं। "जो आप अकेला रहता है और अपने परिवार को अकेला छोड देता है।"[114] जोसुआ को बहुत विचित्र लगता क्योंकि, किसी हिन्दुस्तानी को अपने परिवार को अकेला छोडते उन्होंने पहली बार देखा था।पहाड पर छह महिने बिताने के लिए टुरिस्ट लोग जब छह महिने बाद जाने लगते तो जोसुआ उनपर चिढ़ती और अगले छह महिने तक उनकी प्रतीक्षा में रहती। तब उसका पिछले छह महिने का अकेलापन अगले छह महिने में न रहता, "जब छह महिने बाद गर्मियां शुरू होते ही वे लोग लौटने लगते, तो भी वह वहीं बरामदे में बैठी दिखायी देती - जैसे उन्हीं के आने की प्रतीक्षा कर रही हों।"[115]

काया का अकेलापन और अकेलेपन में उसका असहायपन जोसुआ की उसके बारे में जो सोच है, उसमें नजर आता है, "उनके सामने वह फिर एक छोटी, जिद्दी, खानाबदोश लड़की बन गयी थी-जिसके पिता दिल्ली चले गये थे, माँ बिस्तर पर पडी रहती थी, भाई कठपुतली की तरह चक्कर लगाता था।"[116]

काया अपने अकेलेपन में छटपटाती रहती है। अपने अकेलेपन में वह इतनी अन्दर-ही-अन्दर घुटती रहती है कि, न रोती है, न उससे पूरी तरह से समझौता कर पाती है। रात के समय उसका, "दिन भर का अकेलापन, गुस्सा, तृष्णा, हताशा आपस में गुँथकर एक धुंध का गोला-सा बन जाते, जो न इतना कोमल होता कि, आँसुओं में पिघलकर बाहर आ सके, न इतना सख्त होता कि, वह उसकी पकड में आकर किसी सूझ, किसी समझदारी की सांत्वना में बदल सके।"[117]

काया अपना अकेलापन अपनी बुआ की लडकी लामा और उसकी एक कुतिया 'गिन्नी' के साहचर्य में बाँटती है। लेकिन लामा शादी के बाद वहाँ से चले जाना और गिन्नी का मर जाना काया को और भी अकेला बना देता है। अपना घर और चारों ओर के परिवेश में वह स्वयं को अकेला महसूस करती है। यह अकेलापन उसकी अंदरूनी बीमारी है, जिसे न कोई देख सकता है, लेकिन वह काया को अंदर-ही-अंदर पनपकर 'बडा' बनाने लगता है। मतलब शारीरिक बढ़ाव के साथ उसकी मानसिक सूझ-बूझ भी बढ़ने लगती है, "उन दिनों काया ने पहली बार अपने अकेलेपन को देखा था- साफ-साफ अँधेरे में। उसे डर नहीं लगा था। सिर्फ एक अजीब-सा कौतुहल था, जैसे अकेलापन कोई बीमार है, जो भीतर पनपती है और बाहर से जिसे कोई नहीं देख सकता। न छोटे, न माँ, न जोसुआ- और उसे लगता जैसे माँ बडी हो रही है, वैसे वह भी, हालाँकि माँ को सब देख सकते थे, उसे कोई नहीं।"[118]

काया अपने अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती है। वह इस उपन्यास में 'आस्तिक' अस्तित्ववादी बनायी गयी है। वह देवी चंडिका से प्रार्थना करती है, "मेरा सब-कुछ तुम पर न्योछावर है, देखो, अब मेरा कोई नहीं है। मैं बिल्कुल अकेली हूँ।"[119]

काया अपने चाचा के घर जाकर भी अकेला ही महसूस करती है। वहाँ पर उसे अपने चाचा का लडका बीरू, "जो अकेले लडकों की तरह उसे बाहर की दुनिया बहुत छोटी और सीमित जान पडती थी।"[120] अकेलेपन से पीडित ही नजर आता है। चाचा जो बीरू की माँ के गुजर जाने के बाद अकेले बन गये हैं, एक औरत को बीरू की माँ बनाना चाहते हैं जो बीरू को यह बात पसंद नहीं है। घर में वह सबसे कटा-कटा रहने लगता है। काया भी इस घर के ऐसे वातावरण में खुद को अकेला पाती है, तो 'संत्रस्त' हो उठती है।, "वह घटों अकेले कमरे में बैठ सकती थी, लेकिन उसे पता चल जाता कि, सारा घर खाली है तो उसे अपना खाली कमरा भी खाने दौडता।"[121] काया वहाँ पर अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए दिनभर जंगलों में भटकती रहती थी। जहाँपर लामा, बीरू की स्मृतियाँ उसका अकेलापन दूर कर देती थी। "कुछ दूर अकेले चलती रही। जंगल में अकेला नहीं लगता, उसने सोचा। हमेशा लगता है, कोई तुम्हे देख रहा है, झाडी के पीछे से या पेडों के झुरमुट में।"[122]

काया के साथ-साथ बीरू और छोटे इन बच्चों का भी अकेलापन इस उपन्यास में स्पष्ट होता है। छोटे काया की अनुपस्थिती में अपने को इतना अकेला समझते कि काया के साहचर्य में अपना अकेलापन भर देते हैं। काया जब उनके पास आकर उसके बालों को सहलाकर उसकी पूछताछ करती तो छोटे का अकेलापन दूर हो जाता। "सिर्फ अपने अकेलेपन का खाली सुराख बचा रह गया था, जो धीरे-धीरे भरने लगा।"[123]

बीरू यह पात्र तो अकेलेपन से इतना पीडित है कि उसके द्वारा बजायी गयी वायोलीन की, "आवाज तक अकेली आती थी।"[124]

इस प्रकार हम देखते हैं कि, उपन्यास का हर पात्र अकेलेपन से घिरा हुआ है। इनके बारे में एक विद्वान लिखते हैं, "काया के चरित्र में जो अकेलापन है, उसे लेखक ने अधिकांश पात्रों में उत्पन्न करके एक घने

और गहरे अकेलेपन के वातावरण को सारे उपन्यास में बिछा दिया गया है।"[125] डॉ. बांदिवडेकरजी के अनुसार यह अकेलापन पैदाइशी नहीं है।

(2) अजनबीपन :-

अजनबीपन की भावना एक निर्वैयक्तिक समाज का निर्माण करती है, जिसमें कोई किसीका नहीं होता।

'लाल टीन की छत' का अजनबीपन भी मनुष्य के ऐसी ही मानसिक रचना पर आधारित है। यहाँ तक कि, इसमें जो पात्र हैं, वे इस अजनबीपन की भावना प्रकृति के अन्य चीजों पर आरोपित करते हैं। जैसे काया जब अपनी माँ की पीडा एवं उसकी चीख उन पहाडों में गूँजती सुनती है, तो उसे वह पहाड जहाँपर बचपन से रहने के कारण उसे अपने लगते थे, अजनबी लगने लगते हैं, "पहली बार उसे यह चीख भयानक-सी जान पडी। जिन पहाडों को वह इतना अपना समझती आयी थी, अचानक उस रात वे अजनबी-से जान पडे।"[126]

काया जब चाचा के घर जाती है तो वहाँ के लोगों का एक-दूसरे से कटा रहने का अनुभव उसके लिए वह घर और भी अजनबी बना देता है और वह सोचने लगती है, जब पानी बरस रहा होता है, "पराये घर में बारिश भी अजनबी हो जाती है -वैसी नहीं, जैसी अपने घर की छत पर सुनायी देती है।"[127] स्वयं अपना घर और चाचा के घर में जो अलगाव काया ने पाया था, उससे काया के मन में चाचा के घर के प्रति जो अजनबीपन की भावना आती है, उसे वह प्रकृति के पहाडों पर थोंपना चाहती है। बारिश में बिजली के चमकने पर, "एक क्षण के लिए दूर पहाडों की झलक दिखायी दे जाती - और वे भी काया को अजनबी लगते, मानों वे उन पहाडों से बिल्कुल अलग हों, जो अपने घर के छज्जे से दिखायी देते थे।"[128]

काया अपने उम्र के उस दौर से गुजर रही है जिसमें न उसे पूरी वैचारिक परिपक्वता है और न पूरा अल्हडपन। अपनी माँ का 'माँ बनना' वह समझती नहीं है। उसका 'बडा होना' उसमें माँ के प्रति अजनबी बना देता है, मतलब उसे वह अपनी माँ नहीं लगती, अजनबी औरत लगती है। "वह अब इतनी बडी हो गयी थी, कि उन्हें देखकर आँखें मुड जाती थी, लगता था, वह कोई दूसरी औरत है, जिनका चेहरा सिर्फ माँ से मिलता है, बाकी सब-कुछ पराया है।"[129] और काया को लगता जैसे वह किसी अजनबी घर में रह रही है। काया अपने

अकेलेपन एवं अजनबीपन से त्रस्त होकर अपने चाचा के लडके बीरू की तरफ आकर्षित हो जाती है। उसका दुहरा व्यक्तित्व देखकर उसका बीरू के प्रति अपनापन अजनबीपन की भावना में बदलने लगता है। एक बीरू के दो व्यक्तित्वों के उलझन में रहती, वह कभी एक के पास आ जाती तो उसे दूसरा अजनबी-सा जान पडता, जब दूसरे को पहचानने लगती, तो उसे पहला अजनबी लगता। इन अपने रिश्तों के अजनबीपन की वजह से काया को अपना 'लाल टीन की छत' वाला मकान भी अजनबी लगने लगता है, "कभी कभी शाम के मीले धुंधलके में मकान भी अजनबी लगता।"[130]

(3) अलगाव :-

'अलगाव'की भावना मनुष्य में कभी-कभी अवसाद की स्थितियाँ पैदा करती है। "एक ओर मनुष्य की सहज वृत्तियों पर आधारित आवश्यकताएँ हैं और दूसरी ओर वे वर्जनाएँ है, जो सभ्यता ने आरोपित की है। इस द्वंद्व में सदा चुनाव की स्थिति बनी रहती है। इसीलिए मनुष्य का जीवन दु:खमय रहता है और अलगाव की स्थितियाँ पैदा होती है।"[131]

'अलगाव' की भावना में व्यक्ति की वैयक्तिक चेतना प्रधान होती है। डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र के अनुसार, "विश्वजनीन उपकरणता में व्यक्ति स्वयं को एक उपकरण के रूप में ही आबद्ध कर सकता है, किन्तु उसकी कामना सबकुछ को स्वयं के लिए उपयोग करने की रहती है। समय और अवसर जो विश्व उसके समक्ष प्रस्तुत करता है - उन सबका उपयोग वह स्वअस्तित्वमय के धरातल पर करना चाहता है। यह वैषम्यपूर्ण स्थिति अस्तित्वमय की चेतनात्मक प्रतीति उसे विश्व से विमुख करती है।"[132]

काया का परिवार एक-दूसरे से ऐसे ही 'अलगाव' में डूबा है। काया और उसकी माँ, माँ-बच्चों में यह अलगाव दिखायी देता है। "सन्नाटा यहाँ भी है, इस कमरे में। लेकिन माँ किसी को नहीं बुलाती या जब बुलाती है, हममें से कोई नहीं सुनता। हम इस सुखद भुलावे में रहते हैं कि, वह कभी नहीं बुलाती - किसीको नहीं बुलाती।"[133]

काया ऐसी मानसिक स्थिति से गुजर रही है, जिसमें उसे समझनेवाला, प्यार करनेवाला किसी का साहचर्य एवं सामीप्य चाहिए। जब वह उसे नहीं मिलता तो वह स्वयं के प्रति इस अलगाव को महसूस करती

है। यहाँ तक कि, उसे अपने शरीर के सारे अवयव एक दूसरे से अलग लगते हैं। "कुछ देर तक उसे लगता रहा, जैसे वह अलग है, उसकी देह अलग, उसके पैर अलग, - और तीनों के बीच सिर्फ हवा है, जो फर्श की तख्तियों के बीच से छनकर ऊपर आती है।"[134] काया की यह अलगाव की भावना उसके अपने प्रति अकेलापन और दूसरों के प्रति अजनबीपन की भावना का परिणाम है।

(4) भय एवं आतंक संत्रास की भावना :-

अस्तित्ववादी चिंतन या दर्शन परिवेशगत उपजी हुओ व्यक्ति-मानस की विभिन्न आशंकाओं से गुजरता है उसमें भय, आतंक की भावना समावेशित है। "संकट जब अस्तित्व को घेर लेता है, या जब अस्तित्व निहत्था और अरक्षित हो जाता है तब भय परिवेश में छा जाता है।"[135]

भय एक 'संत्रास' की भावना का ही रूप है। हेडेगर के अनुसार, "संत्रास एक प्रकार का भय है। भय में भयभीत करनेवाली वस्तुओं का ज्ञान रहता है, जैसे प्लेग, युद्ध, हिंस्त्रपशु आदि। किन्तु संत्रास में संत्रस्त करनेवाली वस्तुओं के नाम-रूप का परिचय नहीं मिलता। वह अनिश्चित रहता है। जीवन में शून्यता भर जाती है।"[136] अस्तित्ववाद के प्रवर्तक सार्त्र ने कहा है, "संत्रास से पलायन अपने से पलायन है। उसे भोगकर ही हम प्रामाणिक जिन्दगी जी सकते है। रूढ़िबद्ध क्रिया-कलापों में पनाह लेकर हम संत्रास से बच सकते हैं, किन्तु यह आत्मछल (बैडफेथ) है।"[137]

दार्शनिक चिन्तक कीर्केगार्द ने इस संदर्भ में "चिता को बहुत महत्त्व दिया है।"[138] इस प्रकार हम देखते हैं कि, विविध अस्तित्ववादी विचारकों ने भय एवं संत्रास की अलग-अलग परिभाषा दी है। 'लाल टीन की छत' में काया की माँ जिस संत्रास से पीडित है वह ऐसा ही भयमिश्रित संत्रास है। माँ, लामा से डरती है जो आक्रमक एवं विरोधी प्रवृत्ति की थी। लामा की शादी उसे इस संत्रास से मुक्ति दिलाती है। "माँ हमेशा लामा से संत्रस्त रहती थी - उन्हें लगता था, इस लडकीं का कोई भरोसा नहीं, वह बादल फाडकर थिगली लगा सकती है।"[139] काया की माँ की यह संत्रास एवं भय की भावना स्वाभाविक ही थी, क्योंकि दुनियादारी के प्रति उसे भरोसा नहीं था। लामा जैसी स्वच्छंद एवं विद्रोही लडकी को उनके अनुसार, 'शादी' जैसी रूढ़िवादी पद्धत ही सुखी एवं सुरक्षित रख सकती है। "शायद सच है, माँ के लिए बाहर की दुनिया इतनी कठोर, इतनी भयानक, इतनी पथरीली

थी कि, उनके लिए लामा जैसी लडकी के लिए कोई भी चहारदिवारी, जहाँ वह अपने को समेटकर रख सके, सुख की निशानी थे।"[140]

काया में भी यह आतंक एवं भय की भावना थी, लेकिन जब वह एक खास उम्र में पहुँच जाती है, जहाँ उसे अपने अस्तित्व की पहचान होती है, तब उसका रहस्यमय डर जो बरसों उसे आतंकित कर देता था, उसे खो देती है। "कोई डर नहीं था , कोई उम्मीद नहीं थी -- उस साल की सर्दियों में मैंने ये तीनों चीजें खो दी थी।"[141] काया का 'इस साल' से मतलब है, जिन दिनों उसने माँ की पीडा, बीरू का अकेलापन, चाचा का अकेलापन, खास करके नथवाली औरत का उसके प्रति बर्ताव को देखा था, इस दौरान वह काफी मानसिक उथल-पुथल से गुजर चुकी थी। अपने अस्तित्व की पहचान की तरफ जा रही थी।

(5) पीडा की भावना :-

अस्तित्ववादी दर्शन के अवसादमयी मन:स्थितियों में से मनुष्य की यह एक स्थिति है। युद्ध की विभिषिका का यह एक मनुष्यजाति का मानसिक परिणाम है। "जीवन में त्रास और पीडा से मुक्ति संभव नहीं है। अकेलेपन के बीच मनुष्य की पीडा उसे आन्तरिक दृष्टि से विचित्र बनाती है।"[142]

प्रस्तुत उपन्यास की काया भी अपने लोगों द्वारा दी गयी अकेलेपन, अजनबीपन, अलगाव की भावनाओं से पीडित है। जब उसे पता चलता है कि उसके पिता जो उसके अकेलेपन, अजनबीपन की भावना के जिम्मेदार थे, अपने प्रति उन्हें चिंतित देखकर काया को लगता है, जैसे उसके पीडा से भरे, अंधेरे आकाश में वह बात प्रकाश लानेवाली बिजली के समान है। "बाबू पहले ही काया की तरफ मुड गए थे -और तब वह चमत्कार हुआ था, जो समूची पीडा को रौंदता हुआ अंधेरे आकाश में बिजली सा कौंध जाता है - काया मैं तुमसे कहना भूल गया इस बार मैं क्रिसमस में आऊँगा ---- उन्होंने कुछ और कहा था, माँ के बारे में, छोटे के बारे में -लेकिन काया ने उस क्षण कुछ भी नहीं सुना। वह सिर्फ उनके एक वाक्य पर लटकी रही थी।"[143]

काया जब किसी में अपनापन पाती है तब अपनी समस्त पीडा भूल जाती है। दाई माँ का लडका भोलू ने ऊँगालियों से उसे स्पर्श किया, जिसमें वह अपनापन एवं स्नेह पाती है तब उसे लगता है, "जैसे वह खुद उसकी अंगुलियों से अपने घावों को छू रही हो, जैसे उसके आँसू भी उसकी उँगुलियों का हिस्सा है, जो उसकी

आँखों से नहीं, भोलू की अंगुलियों से निकल रहे है। उसके चेहरे को नहला रहे हैं, पिछले दिनों की बेचैन, बदहवास पीडा को धो रहे हो।"[144]

काया को माँ की पीडा के सामने अपनी पीडा तुच्छ लगने लगती है। "उसने उस रात जो कुछ खिडकी के पीछे से देखा था, उसके सामने सब बौने और तुच्छ पड गये थे। पीडा के सामने बडे छोटे हो जाते है, वह बड़ी हो गयी थी।"[145] गिरिजाघर में दीवार पर टंगी खून से लथपथ यीसू की मूर्ति देख उसकी पीडा को महसूस करना इन बातों से उसे अपनी पीडा से छुटकारा पाने का उसे जैसे उपाय मिल गया था। काया को सभी छोडकर चले गये थे। अन्त में वह अकेली रह गयी थी। वह भी "हमेशा छुटकारा पाने के लिए तडपती थी, भय से, स्मृतियों से, दूसरों के आतंक से।"[146] काया को उस पीडा से तब मुक्ति मिलती है, जब वह मानसिक परिपक्वता देनेवाली शारीरिक बदलाव की अंतिम सीढी को वह पार कर लेती है। उसे पहला मासिक धर्म होता है, वह किशोरावस्था के अल्हडपन, अनजानेपन से निकलकर जवानी की समझ में पहुँच जाती है। "एक भयानक पीडा की लहर मेरी देह को तोडते हुए निकल गयी। मेरे हाथ जांघों के बीच उस पीडा को खोजने लगे -- एक लिसलिसा, गर्म, रक्तिम ज्वार बाहर निकल रहा था।"[147] यह अन्तिम पीडा काया को उन तमाम द्वंद्व एवं मानसिक उथल-पुथल से मुक्त कर देती है, जो संपूर्ण उपन्यास में उसने पायी थी।

(6) ईश्वरवाद :-

निर्मलजीने प्रस्तुत उपन्यास में आस्तिक एवं आस्थावादी अस्तित्ववाद के दर्शन कराये हैं। काया अपने अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए ईश्वर को पुकारती है। उसे लगता है कि, अपने आपको शारीरिक कष्ट देने से ईश्वर उसे मिल जाएगा। तब कपडे उतारकर छत पर छंडी हवा में बैठ जाती और माँ चंडिका देवी से प्रार्थना करती, "माँ चंडिका, काली माँ, आओ मेरे पास चली आओ ! आओ, देखो, मैं तुम्हारे लिए बैठी हूँ। तुम्हारे लिए मैं सब-कुछ छोड दूँगी। जहाँ तुम कहोगी, वहीं चली जाऊँगी।"[148] काया अपने अकेलेपन का एकमात्र सहारा ईश्वर को ही समझती है।

धीरे-धीरे काया उम्र के उस मोड की ओर जाने लगती हैं, जहाँपर लडकियों को पता चलता है कि, स्त्री-जीवन क्या होता है? नथवाली औरत के साहचर्य के अनुभव से वह जानने लगी थी कि, स्त्री में शारीरिक बदलाव का कब और कैसे एहसास होता है?तब उसे एहसास होता है कि, वह धीरे धीरे 'बडी' होने लगी हैं। तब

वह ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह स्कूल जाना नहीं चाहती है, इसीलिए जो भी 'होना' है, वहाँ जाने से पहले हो जाए ताकि, वह स्कूल जाकर, होस्टेल के अपने फिर से आनेवाले अकेलेपन से बच जाए। "मुझे कभी-कभी यह आशा भी बँध जाती कि, अगर इन दिनों मुझे कुछ हो जाता है तो शायद मुझे वह (माँ) होस्टेल नहीं भेजेगी और इसीलिए जब मैं अकेली होती तो घण्टों काली माँ से प्रार्थना करती कि, अगर मुझे कुछ होना है, तो स्कूल जाने से पहले ही चाहिए, लेकिन अब मैं प्रार्थना करते समय अपने कपडे नहीं उतारती थी क्योंकि वे सर्दी के दिन थे और छज्जे पर दिन रात बर्फ जमी रहती थी।"[149] काया का यह विचार भी उसके मानसिक विकास-क्रम की गवाही देता है।

काया इस उपन्यास में अंत तक आस्थावादी दिखायी देती है। वह 'मृत्यु' में ही ईश्वर मानती है। वह इन स्वार्थी लोगों से भरी दुनिया से दु:खी मन को छुटकारा देना चाहती है। आस्तिक अस्तित्ववादी कीर्केगार्द के अनुसार, "वेदना से व्याकुल होकर हम ऐसे संसार की आकांक्षा करते हैं, जो सोद्देश्य और व्यवस्थित है। अनिश्चय की स्थिति में जब मन दु:खी होता है, तब हमें ज्ञात होता है कि, ईश्वर क्या है?"[150] ऐसी ही मन:स्थिति से गुजरती हुआ काया को ट्रेन की दो पटरियों में ईश्वर नजर आता हैं, जहाँ पर मौत है। "रेल की दो लाईनों के बीच जो दुपहरे के उजाले में बिल्कुल साफ और पवित्र दिखायी दे रही थी। मुझे लगा, उनके बीच वह भरोसा है, जो मैं बीरू को दे सकती हूँ। वहाँ ईश्वर है - और एक बार ईश्वर के पास जाकर मैं उस पाप से छुटकारा पा सकती हूँ जो कायर और स्वार्थी लोगों के साथ चिपटा रहता है।"[151] काया अपने आस्तिक अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से कीर्केगार्द, जास्पर्स इनका समर्थन करती है, लेकिन सार्त्र से दूर जाने लगती है। जो मृत्यु को ही मानव-जीवन की अन्तिम परिणति मानता है लेकिन ईश्वर का अस्तित्व इन्कारता है। मँगतू भी ईश्वरवादी है।

(7) मृत्यु-विषयक भावना :-

मृत्यु-विषयक विचार प्रस्तुत उपन्यास में काया, छोटे, लामा, नथवाली औरत आदि पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं। काया और छोटे इस मृत्यु के आतंक से अनजान है। काया ने मृत्यु को देखा नहीं, सुना है। जब लामा ने रेल की पटरियों की दूसरी ओर से झाडियों में छिपकर आवाज दी थी। गिन्नी उधर जाते-जाते रेल के नीचे कुचलकर मर गयी थी। काया ने यह देखा था और उसकी अल्हड सोच कहती है कि, मृत्यु कोई बुलावा है, जो सुनायी देता है। "गिन्नी मरी नहीं है -उसे बुलाया गया है। किसने बुलाया था-लामा ने- या किसी और ने,

जिसे वह आखिर तक नहीं देख पायी ...?"[152] मृत्यु के आतंक, मृत्यु के डर से अनजान काया को मृत्यु एक रहस्य ही लगता है। काया की बुआ पहाडों में बसे शहर को 'मरा हुआ' शहर कहती तो काया उससे पूछती, "कैसे मरा हुआ।"[153]

काया की बुआ की लड़की लामा का मृत्युविषयक दृष्टिकोण अलग है। वह मृत्यु को जिन्दगी के तनावों से छुटकारा समझती है। वह आत्मा को मानती है। बुआ लामा की शादी कर देना चाहती है। लेकिन लामा को यह पसंद नहीं है। वह स्वतंत्रता से रहना चाहती है। यह शादी उसकी अनिच्छा से होनेवाली है तब लामा को यह जीवन निरर्थक लगने लगता है। अपनी आत्मा को वह मुक्ति के लिए तडपता पाती है। ठीक वैसे, जैसे गिन्नी कुतिया की आत्मा को वह उसकी आँखों में तडपता देखती है। उसे लगता है, मृत्यु ही गिन्नी के आत्मा को छुटकारा देगी। वह काया से कहती है, "सुनो, गिन्नी छुटकारा चाहती है, जैसे मैं चाहती हूँ ---मालुम है, छुटकारा कैसे मिलता है?"[154] सुरंग में जाकर वह गिन्नी को ट्रेन के आने से पहले बुलाती है, पुचकारती है। गिन्नी उसकी तरफ जाते-जाते ट्रेन से कुचलकर मर जाती है।

गिन्नी की मृत्यु के बाद काया ने यीसू के मृत्यु के बारे में जाना था, जो विश्व के लोगों को दुःख भोगकर उनके लिए मरे थे। मृत्यु के रूप की यह एक पहचान उसके सामने थी। इसके बाद काया ने जोसुआ की मृत्यु करीब से देखी थी, जिसमें न आतंक था, न डर। शायद जोसुआ के लिए अस्तित्ववादियों की तरह "मृत्यु जन्म के समान ही एक तथ्य मात्र है।" [155] उनकी मृत्यु से काया को यह बात समझ में आती है कि, मृत्यु हिन्दुस्तानी या विदेशी हो सभी मनुष्यों के लिए अनिवार्य है।

काया का भाई छोटे के लिए भी मृत्यु उसी रहस्य की तरह थी, जैसे उसके अकेलेपन का रहस्य। नथवाली औरत के लिए मृत्यु वह बात थी, जिससे भेंट करने के बाद आदमी लौटकर वापस नहीं आता। 'मृत्यु' और उसका रहस्य खुलने के बाद काया उससे आतंकित होने के बजाय उसके प्रति आस्थावान बन जाती है। जिसमें वह जिन्दगी की सार्थकता महसूस करती है। उसमें आत्मनिर्वासन की भावना जागने लगती है। 'आत्मा' जैसे चीज को वह अपने से मुक्त करना चाहती है। "मैं उसे छोड दूँगी, उसे जाने दूँगी, मैं जो इतनी लालची, इतनी स्वार्थी रही हूँ, अब, इस मौके पर दूसरों से छुटकारा पाने की जगह खुद उस बेचैन चक्कर काटती, चीखती, रिरियाती चीज को अपने से मुक्त करा दूँगी।"[156]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास का हर पात्र मृत्यु के डर से अनजान है, क्योंकि उसने मृत्यु को जीवन का अन्तिम सत्य मान लिया है।

(8) **अस्तित्व की पहचान :-**

निर्मलजी ने प्रस्तुत उपन्यास में किशोरावस्था से जवानी तक के काया के सफर एवं उसकी अनुभूतियों को स्पष्ट किया है, जिसमें उसका अल्हडपन जाकर उसमें मानसिक परिपक्वता एवं प्रगल्भता आ जाती है। इस उपन्यास के पात्र जो 'भय और आतंक, अकेलापन और सूनापन, अजनबीपन और बेगानापन धुंध की तरह छाया रहता है।"[157] काया को उनके बीच रहकर, उनसे मिले कटु, अच्छे अनुभूतियों से उसे अपनी जीवन की सार्थकता अन्त में मिलती है। "वह बडों के संसार में अपने को अकेली और अजनबी पाती है। उसके अकेलेपन की साथ गिन्नी थी- वह मर गई, लामा थी-उसकी शादी हो गयी। विकराल पहाडों और बियाबान झाडियों के बीच भटकने के लिए केवल काया अकेली बच गयी।"[158]

इसी भटकन के दौरान उसका और बीरू का अनामिक आकर्षण, नथवाली औरत और उसका मांसल संबंध उसे अपनी अस्तित्व की पहचान करा देते हैं। अन्त में जो 'बायालॉजिकल' घटना उसके साथ घटती है, उसमें उसका सारा अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास कुण्ठा, अलगाव समस्त पीडा खून के रूप में बह जाता है और वह अपने 'मैं' पन को पहचानने लगती है। "मेरा शहर दब गया था-हमेशा के लिए -और मैं उसपर उगी बसन्त की घास और कीचड में लिथडी बर्फ से अपना खून पोंछ रही थी, मैं घास पर लोट रही थी, मैं हो गयी थी। मैं ईश्वर के पास पहुँचकर उसके परे निकल गयी थी।"[159] अन्त में हम देखते है कि जो काया अपनी असहाय स्थिति में ईश्वर को पुकारती थी। वह अपना अस्तित्व पाने के बाद इतनी मानवतावादी बन जाती है कि अपने को ईश्वर से श्रेष्ठ कहने लगती है।

कुल मिलाकर निर्मलजीका यह उपन्यास अस्तित्ववादी दर्शन को लेकर ऐसा रहस्यपूर्ण बन गया है, जिसे डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकरजी "क्लासिक नॉवेल (Classic Novel)"[160] की उपमा देते है।

डॉ. पुष्पलाल सिंह इस उपन्यास के बारे में लिखते हैं, "लाल टीन की छत' एक वयसन्धि को पार करती लडकी के अपने अंत:करण (खोल) से बाहर निकलने की कहानी है। लडकी के अपने 'खोल ' का

संसार बहुत ही एकान्त, रहस्यमय और आतंकपूर्ण है, जिसमें यौन चेतना की अनुभूति भी शामिल है। उपन्यासकार ने धीरे-धीरे अपने ही हृदय पर खुद द्वारा लगाए गए कर्फ्यु को तोडने के संकेत दिये हैं। सेल्फ की खोज में संपूर्ण अनुभूतियाँ अन्त में संवेदना की खोज में धरातल पर जिस तल्खी से सामने आती है, वहां एक यथार्थ जीवनदृष्टि के संकेत भी छोड जाती है।"[161]

इस प्रकार यह उपन्यास अति विशिष्ट पात्रों की सूक्ष्म मनोदशा का चित्रण करता है। यहां काया के बचपन और यौवन की मनोदशा का सूक्ष्म रेखांकन है। इस उपन्यास के पात्र आत्मकेन्द्रित है, जो अपने ही दायरे में उलझे हुए देखने को मिलते है। ऊपर से निष्क्रीय लगनेवाले ये पात्र भीतर से चौकन्ने, सतर्क और खतरे की आशंका से भयभीत लगते है। डॉ. चंद्रकान्त बांदिवडेकरजी के मतानुसार, "अपनी ही तीव्र संवेदनाओं के बंदी ये चरित्र एकांत द्वीप की तरह एक दूसरे से दूर और असंपृक्त रहते हैं। ये बाहर से अमुखर लगते हैं - जब बोलते हैं तब लगता है कि कहीं तल तक दबी चीज खींच-खींच बाहर निकालने का असफल श्रम कर रहे हैं।"[162]

निष्कर्ष :-

'अजय की डायरी', 'अपने-अपने अजनबी' एवं 'लाल टीन की छत' इन उपन्यासों में आधुनिक मनुष्य के जीवनदृष्टिकोण को आधार बनाकर अस्तित्ववादी दर्शन को स्पष्ट किया है।

'अजय की डायरी' का अजय आज की भौतिकता, यांत्रिकता से भरी आधुनिक सभ्यता के खिलाफ है, संत्रस्त है। इस भौतिकवाद से जन्मे मानववाद का वह विद्रोही है। यहीं कारण है कि वह अमरीका में भी अपने आपको ढ़ाल नहीं पाता। मूल्य-विघटन से उसे चीढ़ है। वह प्रेम का पूजारी है। वह उपन्यास में पूरा आस्तिक भी नहीं बन पाता और पूरा नास्तिक भी नहीं बन पाता। यह उसका मानसिक द्वंद्व आज के अस्तित्ववाद से पीढ़ित मानव का द्वंद्व है। उसका मूल्य-विघटन विरोधी संघर्ष आज के मनुष्य को संदेश भी बन सकता है।

'अपने-अपने अजनबी' यह उपन्यास अज्ञेयजी ने युरोप में रहकर ही लिखा है। युरोप द्वितीय विश्वयुद्ध का सहभागी देश रहा है। योके और सेल्मा ये पात्र अज्ञेय जीने पूर्व और पश्चिम की तुलना के उद्देश्य से लिये हैं। योके पश्चिमी जीवनदृष्टि को लेकर चलती है, जो सार्त्र के मानववाद की कायल है, लेकिन उसका मानववाद नियति के आगे मजबूर हो जाता है। वैसे तो किसी स्थान का नाम या स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया है, लेकिन योके कि मन:स्थिति जो मृत्यु से डरी हुई, संत्रस्त, कुण्ठित, निराशावादी है, इससे अनुमान लगाया जा

सकता है कि, वह युद्ध की विभीषिका के वातावरण का प्रतिनिधीत्व करती है। पश्चिम में पनपनेवाली अस्तित्ववादी धारा की वह शिकार हो गयी हो। उसकी अनास्था को जगन्नाथन् के आस्थावाद का आधार मिला। जगन्नाथन् के परिवेश को भी हम पूर्ण रूप से भारतीय नहीं कर सकते, क्योंकि यह उल्लेख भी अज्ञेयजीने कहीं किया नहीं है। मानवी अस्तित्व को समाप्त करनेवाली मृत्यु की स्थिति का चित्रण 'अपने-अपने अजनबी' में मिलता है। इसमें 'मृत्यु का साक्षात्कार' का वर्णन मिलता है। हिन्दी के उपन्यास लेखक अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने युद्ध की छाया में मृत्यु के प्रश्न को उठाया है।

युरोप में अपना ज्यादह समय बीतानेवाले निर्मल वर्मा ने 'लाल टीन की छत' में अस्तित्वाद का अवसाद स्पष्ट करने के लिए काया जैसी बारह-तेरह साल की लडकी को चुना है, जो वय:सन्धि के दौरान है। उसे प्यार, सहानुभूति, समझौते की जरूरत है, लेकिन उसका परिवेश बिल्कुल इसका विरोधी है। परिणामस्वरूप वह कुछ मात्रा में विकृत, लेस्बियां (होमोसेक्सुअल) जैसे संबंधों के आकर्षण में फँसती जाती है। इसमें जो भी अनुभूति होती है, उससे वह दुनियादारी के प्रति प्रगल्भ होती जाती है। काया आस्तिक है। अस्तित्ववादी समस्याओं से घिरी है, जिससे छुटकारा पाने के लिए वह भगवान के कृपा की आशा रखती है। उसे इन समस्याओं से छुटकारा तब मिलता है, जब उसमें शारिरिक परिपक्वता आती है। जीवन का अर्थ उसे समझने लगता है।

तीनों उपन्यासों को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो उनमें परिवेश थोडी-बहुत मात्रा में एक जैसा लगता है। पहाडी प्रदेश से दूर एकान्त, उस एकान्त में स्थित पात्रों की मनोभावना, उस मनोभावना से उत्पन्न उनके जीवनदृष्टिकोण, जीवन दृष्टिकोण को लेकर मानसिक द्वंद्व एवं संघर्ष आदि। प्रत्येक उपन्यास का दृष्टिकोण उक्त उपन्यासकार का निजी दृष्टिकोण है। आलोच्य उपन्यासों में स्मृतियां, आत्मकथात्मक शैली एवं डायरीशैली को ज्यादह महत्व दिया गया है। अस्तित्ववादी दृष्टिकोन को समझानेवाले पात्रों के नाम भी ज्यादातर विदेशी हैं, जैसे, योके, पॉल, यान, सेल्मा, मि. हैरिस, एडिथ इवान्स, मि. फ्रैंक, क्लारा मिस जोसुआ आदि।

आलोच्य उपन्यासों का वातावरण युरोप, अमरीका, बर्फीले प्रदेश के वातावरण का अनुकरण करता है। 'अजय की डायरी' का अमरीकी वातावरण, 'अपने-अपने अजनबी' का बर्फीले प्रदेश का वातावरण, 'लाल टीन की छत' का पहाडी वातावरण देखने पर लगता है कि, ये तीनों उपन्यास परदेशी वातावरण में पले होने के कारण उनमें अस्तित्ववादी विचारधारा प्रबल बन बैठी है। भारतीय परिवेश में सिर्फ अस्तित्ववाद से प्रभावित साहित्यधारा का निर्माण होता जा रहा है। भारतीय लेखकों के द्वारा परदेशी वातावरण का चित्रण इन

उपन्यासों की विशेषता है। इन उपन्यासों में भारतीय प्रदेशों का वातावरण भी आया है, जो अस्तित्ववाद से प्रभावित लगता है। इन उपन्यासों में परिवेश की दृष्टि से मानवीय स्थिति को अधिक गहराई से देखा गया है।

इन आलोच्य उपन्यासों में अकेलापन, अलगाव, अजनबीपन, जीवन की निरर्थकता, संत्रास, घुटन, पीडा, आतंक, जीवन से ऊब, आत्मनिर्वासन की भावना, मृत्युबोध, निरीश्वरवादिता, क्षणवाद, मूल्यों का विघटन, नास्तिक-अस्तिकता का द्वंद्व, स्वतंत्रता की चाह, चयन का स्वातंत्र्य आदि अस्तित्ववाद के सूत्र मिलते हैं।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि, आलोच्य उपन्यासकारों ने मूलत: पश्चिमी अस्तित्ववादी विचारधारा को भारतीय विचारधारा से मिलाने का प्रयत्न किया है। उनका यह प्रयास सराहनीय एवं साहसी निश्चित है, परंतु भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर यह विचार इतना फलता हुआ या फुलता हुआ नहीं दिखायी देता है।

आलोच्य तीनों उपन्यासों में स्वतंत्रता की मांग की गयी है। इनमें मानसिकता का चित्रण चरित्रों के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में करने की विशेष प्रवृत्ति उभरी हुई दिखायी देती है, जिससे पात्रों की मानसिक अवस्थाएँ अधिक विश्वसनीय लगती है। सन साठ के बाद की अस्तित्ववादी चेतना ने मनोवैज्ञानिक औपन्यासिक धारा को अपने में समेट लिया है। फलत: मनुष्य के मन का अधिक जटिल रूप सामने उभरा है। इन उपन्यासों में परिस्थितियों से टकराकर उनको झुकानेवाले एवं स्वातंत्र्य की रक्षा करते हुए अपने दायित्व का पालन करनेवाले चरित्र कम नजर आते हैं। इन उपन्यासों के प्रमुख पात्र अपने व्यक्तित्व को प्रबल बनाकर परिस्थितियों पर अधिकार पाने में असफल लगते हैं। इसके विरूद्ध परिस्थितियों के सामने टूटकर, दु:खी, निराश बननेवाले पात्रों की संख्या यहाँ अधिक दिखायी देती है। सार्त्र प्रतीत दृढ़ संकल्पशील पात्रों की तथा चरित्रों की यहाँ कमी है। अपनी स्वतंत्रता को भी दृढ़ता के साथ नहीं बनाये रखतें। यहाँ सभी पात्र निरर्थकता को मिटाने का काम करते हैं। इन लेखकों ने मानवी स्वातंत्र्य को स्थिर बनानेवाली संकल्प-शक्ति के बारे में नहीं सोचा है।

: संदर्भ सूची :

1. डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1984, पृ. 179-180
2. वही, पृ. 180
3. डॉ. शिवप्रसाद सिंह- आधुनिक परिवेश और अस्तित्वाद, नेशलन पब्लिशिंग हाऊस, सं. 1973, पृ. 69
4. डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त - पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, अशोक प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1989, पृ. 237-238
5. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 244-245
6. वही, पृ. 37
7. वही, पृ. 335
8. वही, पृ. 194
9. वही, पृ. 194
10. वही, पृ. 48
11. डॉ. शान्ति सुमन - जल झुका हिरन, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1976, पृ. 16
12. डॉ. हेतु भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव-प्रतिमा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1983, पृ. 111
13. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 232
14. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 12
15. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 323
16. वही, पृ. 328
17. वही, पृ. 329
18. एलिएनेशन ॲण्ड लिटरेचर - Dec 73 –Mar 74, पृ. 63
19. Dr. Ansert fisher - 'The necessity of Art' Penguin books Ltd., England, 1964, p. 86
20. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 247
21. वही, पृ. 249

22. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 39

23. वही, पृ. 250

24. कमलेश्वर - नयी कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1978, पृ. 177

25. डॉ. देवराज उपाध्याय -अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 274

26. वही, पृ. 188

27. वही, पृ. 327

28. डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1984, पृ. 44

29. डॉ. देवराज उपाध्याय -अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 219

30. डॉ. नवलकिशोर - मानववाद और साहित्य , राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1972, पृ. 68

31. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 219

32. वही, पृ. 219

33. डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त - पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त अशोक प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1989, पृ. 243

34. डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1984, पृ. 32

35. डॉ. बच्चनसिंह : आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीजशब्द, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1983, पृ. 81

36. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 264

37. वही, पृ. 65

38. वही, पृ. 98

39. वही, पृ. 98

40. वही, पृ. 123

41. वही, पृ. 273

42. डॉ. आशा मेहता- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वैचारिकता, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, सं. 1988, पृ. 45

43. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 274

44. वही, पृ. 329

45. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ. 102-103

46. डॉ. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद , राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1978, पृ. 104

47. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ.90

48. डॉ. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद , राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1978, पृ. 104

49. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ.87

50. श्री भगत/ जोशी/ पाटील - हिन्दी साहित्य का दार्शनिक परिपार्श्व, अजब पुस्तकालय, कोल्हापूर, सं. 1978, पृ. 43

51. वही, पृ. 35

52. वही, पृ. 36

53. वही, पृ. 100

54. डॉ. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद , राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1978, पृ. 108

55. डॉ. देवराज उपाध्याय - अजय की डायरी, राजपाल एण्ड सन्स, नयी दिल्ली, दूसरा सं. 1970, पृ.200-207

56. वही, पृ. 211

57. वही, पृ. 208

58. डॉ. रघुवरदयाल वार्ष्णेय- हिन्दी कहानी के बदलते प्रतिमान, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1975, पृ. 127

59. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - उपन्यास : स्थिति और गति पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1977, पृ.256

60. डॉ. विजयमोहन सिंह - अज्ञेय : कथाकार और विचारक , परिजात प्रकाशन, पटना, पृ. 55

61. डॉ. कुसुम त्रिवेदी - अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ , साहित्य संस्थान, गांधीनगर, कानपुर, सं. 1976, पृ. 43

62. वही, पृ. 52

63. डॉ. हेतु भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव-प्रतिमा, सं. 1983, पृ. 167

64. अज्ञेय : अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 36

65. वही, पृ. 30

66. वही, पृ. 78

67. वही, पृ. 80

68. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन , सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद सं. 1981, पृ. 9

69. वही, पृ. 9

70. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 14

71. वही, पृ. 14

72. डॉ. विद्याशंकर राय - आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन , सरस्वती प्रकाशन मंदीर, इलाहाबाद सं. 1981, पृ. 104

73. डॉ. कुसुम त्रिवेदी - अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ , साहित्य संस्थान, गांधीनगर, कानपुर, सं. 1976, पृ. 52

74. डॉ. सत्यपाल चुघ - अज्ञये के उपन्यासों की शिल्पविधि, ईकाई प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1968, पृ. 154

75. डॉ. कुसुम त्रिवेदी - अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ , साहित्य संस्थान, गांधीनगर, कानपुर, सं. 1976, पृ. 43

76. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 24

77. डॉ. गिरिधर प्रसाद शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णनगर, दिल्ली, सं. 1978,पृ. 148

78. डॉ. कुसुम त्रिवेदी - अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ , साहित्य संस्थान, गांधीनगर, कानपुर, सं. 1976, पृ. 74

79. डॉ.नवलकिशोर - आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता, प्रकाश संस्थान, दिल्ली, सं.1978, पृ.97

80. डॉ.नवलकिशोर - मानववाद और साहित्य, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, सं.1972, पृ.67

81. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.39

82. वही, पृ.90

83. डॉ.हेतु भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानवप्रतिमा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं.1983 पृ.160

84. डॉ.विद्या चौहान - आधुनिक समीक्षा की प्रवृत्तियाँ, संचयन 124/152 सी.गोविन्दनगर, कानपुर, सं.1987, पृ.158

85. डॉ.नवलकिशोर-मानववाद और साहित्य, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, सं.1972, पृ.76

86. डॉ. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1968, पृ. 106

87. डॉ.नवलकिशोर - मानववाद और साहित्य, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, सं.1972, पृ.73

88. वही, पृ. 73

89. डॉ. विजयमोहन सिंह - अज्ञेय : कथाकार और विचारक, पारिजात प्रकाशन, पटना, पृ. 59

90. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.48

91. डॉ. विजयमोहन सिंह - अज्ञेय : कथाकार और विचारक, पारिजात प्रकाशन, पटना, पृ. 57

92. अज्ञेय - एक बूँद सहसा उछली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 258

93. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.48

94. माध्यम - अक्तूबर 1964, पृ. 87

95. डॉ. गिरिधर प्रसाद शर्मा -हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1978, पृ. 130

96. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.43

97. डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त - पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1989, पृ. 242

98. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.89

99. पवित्र शास्त्र (The holy bible) –Reference edition बायबल सोसायटी ऑफ इंडिया, बंगलोर, पृ. मत्तयकृत शुभवर्तमान।

100. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.88

101. डॉ. कुसुम त्रिवेदी - अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ , साहित्य संस्थान, गांधीनगर, कानपुर, सं. 1976, पृ. 73

102. वही, पृ. 73

103. अज्ञेय : अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ.20

104. वही, पृ. 20

105. अज्ञेय : अपने-अपने अजनबी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, नववाँ सं. 1992, पृ. 20

106. डॉ. कुसुम त्रिवेदी - अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ , साहित्य संस्थान, गांधीनगर, कानपुर, सं. 1976, पृ. 73

107. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - उपन्यास : स्थिति और गति पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1977, पृ.15

108. वही, पृ. 274

109. डॉ. नगेन्द्र - नयी समीक्षा, नये संदर्भ , नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, द्वितीय सं. 1974, पृ.64

110. समकालीन भारतीय साहित्य - अप्रैल-जून 1995 पृ. 153

111. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - उपन्यास : स्थिति और गति वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1977, पृ.399

112. डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1984, पृ. 72

113. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 142

114. वही, पृ. 20

115. वही, पृ. 20

116. वही, पृ. 25

117. वही, पृ. 36

118. वही, पृ. 53

119. वही, पृ. 90

120. वही, पृ. 121

121. वही, पृ. 130

122. वही, पृ. 177

123. वही, पृ. 95

124. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 142

125. समीक्षा -नवंबर-दिसंबर 1974, पृ. 52

126. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 69

127. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 116

128. वही, पृ. 117

129. वही, पृ. 52

130. वही, पृ. 52

131. डॉ. चन्द्रभानु रावत/ डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल - समकालीन लेखन : एक वैचारिकी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, स. 1982, पृ. 70

132. डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1984, पृ. 46

133. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 33

134. वही, पृ. 84

135. डॉ. चन्द्रभानु रावत/ डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल - समकालीन लेखन : एक वैचारिकी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, स. 1982, पृ. 1

136. डॉ. बच्चनसिंह - आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीजशब्द, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1983, पृ. 111

137. वही, पृ. 112

138. वही, पृ. 112

139. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 34

140. वही, पृ. 34

141. वही, पृ. 193

142. डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं. 1984, पृ. 195

143. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 19

144. वही, पृ. 59

145. वही, पृ. 75

146. वही, पृ. 204

147. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 205

148. वही, पृ. 90

149. वही, पृ. 192

150. डॉ. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1978, पृ. 102

151. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 205

152. वही, पृ. 57-58

153. वही, पृ. 38

154. वही, पृ. 48

155. डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त -पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1989, पृ. 243

156. डॉ. निर्मल वर्मा - लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 204

157. डॉ. इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1975, पृ. 117

158. डॉ. विद्याशंकर राय : आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, सं. 1981, पृ. 186

159. डॉ. निर्मल वर्मा : लाल टीन की छत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1974, पृ. 206

160. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - उपन्यास : स्थिति और गति वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1993, पृ.402

161. सं. पुष्पपाल सिंह - हिन्दी साहित्य : आठवाँ दशक सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1984, पृ. 85

162. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर -उपन्यास : स्थिति और गति वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 1977, पृ.402

****